खंड

1

संस्कृत नाट्य साहित्य का इतिहास एवं नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द

खण्ड 1 का परिचय

'संस्कृत नाटक' पाठ्यक्रम का यह प्रथम खण्ड है। इस खण्ड में 6 इकाइयाँ हैं। पाठ्यक्रम की ये सभी इकाइयाँ संस्कृत नाट्य-साहित्य के इतिहास एवं नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों से सम्बद्ध हैं। इन इकाइयों में नाटक की उत्पत्ति एवं विकास तथा नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों का विस्तृत विवेचन किया गया है। संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति से सम्बन्धित अनेक मत एवं सिद्धान्त प्रचलित हैं जिनका विस्तृत वर्णन इस खण्ड में किया गया है। रूपक के दशविध भेद हैं– नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग इत्यादि। इन दशविध भेदों के लक्षण के आधार पर नाटककारों ने नाटकों का प्रणयन किया है। इस खण्ड में आप कुछ प्रमुख नाटककारों के जीवन-वृत्त, कर्तृत्व एवं शैलीगत वैशिष्ट्य का अध्ययन करेंगे। नाटक अभिनेय होता है, अतः प्रत्येक दृश्य को दर्शकों के समक्ष दिखाना कठिन होता है। परिणामतः नाटक में कुछ ऐसे पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिससे नाटक के विकास में सहायता प्राप्त हो। इस खण्ड में आप उन पारिभाषिक शब्दों यथा – नेपथ्य, प्रस्तावना, विष्कम्भक, प्रवेशक आदि का अध्ययन करेंगे।

इस खण्ड की प्रत्येक इकाई में इकाई से सम्बन्धित कठिन शब्दावली दी गई है जिनका अर्थ जानना आपके लिये नितान्त अपेक्षित है, इन शब्दों का अर्थ जानकर आप अपने भाषिक सामर्थ्य में वृद्धि कर सकते हैं। इकाइयों के अन्त में उपयोगी पुस्तकों की सूची दी गई है। आप इन पुस्तकों का अध्ययन कर सम्बन्धित विषय की और अधिक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

शुभकामनाओं के साथ

इकाई 1 नाटकों की उत्पत्ति और विकास

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति एवं उनके विकास का अध्ययन कर सकेंगे।
- संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति विषयक विभिन्न मतों से परिचित होंगे।
- संस्कृत नाटकों की विशेषताओं से परिचित होंगे।
- संस्कृत साहित्य के प्रमुख नाटकों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

शैलीगत आधार पर काव्यविधा के तीन प्रमुख भेद माने गए हैं– गद्य, पद्य एवं मिश्र। इनमें से तृतीय भेद 'मिश्रकाव्य' को ही 'नाट्‌य साहित्य' के नाम से भी जाना जाता है। प्रस्तुत इकाई में हम इसी नाट्‌य साहित्य के विषय में जानेंगे कि इनके उद्‌भव की पृष्ठभूमि क्या रही है तथा किन उद्‌देश्यों को लक्ष्य में रखते हुए इनकी रचना की गई। हम यह भी जानेंगे कि नाटकों की उत्पत्ति-विषयक प्रचलित मत कौन-कौन से हैं तथा भारतीय परम्परा में इनमें से स्वीकार्य मत किसे माना जाता है। यहाँ हम संस्कृत नाटकों की प्रमुख विशेषताएँ एवं उनके विकास क्रम को समझने के साथ-साथ प्रमुख संस्कृत नाटकों का परिचय भी प्राप्त करेंगे।

1.2 संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति

'नट् धातु' से व्युत्पन्न 'नाट्य' शब्द, रङ्गमंच पर अभिनेय वाङ्मय का वाचक है जिसका लक्षण भरतमुनि ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

योऽयं स्वभावो लोकस्य सुखदुःखसमन्वितः।
सोऽङ्गाद्यभिनयोपेतो नाट्यमित्यभिधीयते।।

अर्थात् सुख, दुःखादि से समन्वित लोक का स्वभाव जब आंगिक, वाचिक, सात्त्विक और आहार्य रूपी चतुर्विध अभिनयों के द्वारा रङ्गमंच पर अभिनीत किया जाये तो वह नाट्य कहलाता है। लोकजीवन के प्रस्तुतीकरण की इस प्रक्रिया को भरतमुनि ने अनुकृति मानते हुए यह भी कहा है कि– "त्रिलोकी के भावों का अनुकीर्तन या सात द्वीपों के लोकजीवन का अनुकरण ही नाट्य है।" इसी प्रकार की परिभाषा दसवीं शताब्दी के आचार्य धनंजय ने भी प्रस्तुत की है जब वे कहते हैं– **'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्'**। इस रूपक के दस भेदों में प्रथम तथा सर्वप्रधान भेद नाटक है, जिनकी उत्पत्ति-विषयक प्रचलित मतों को अग्रलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत देखा जा सकता है–

1) **वीरपूजा से नाट्योत्पत्ति का सिद्धान्त**– इस सिद्धान्त का प्रतिपादन पाश्चात्य विद्वान् 'रिजवे' ने किया। इन्होंने ग्रीक एवं भारतीय परम्पराओं के अध्ययन के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि जिस प्रकार ग्रीक दुःखान्त नाटकों की उत्पत्ति मृत वीर पुरुषों के प्रति सम्मान प्रकट करने के लिए हुई, उसी प्रकार भारतीय नाट्यों की भी उत्पत्ति वीर पूजा की भावना से ही हुई। इन्होंने अपने मत की पुष्टि हेतु रामलीला एवं कृष्णलीलाओं को प्रमाण स्वरूप उद्धृत किया।

   यह सिद्धान्त प्रायः विद्वानों को मान्य नहीं हुआ क्योंकि भारतीय नाटक प्रायः सुखान्त होते हैं एवं इनका प्रमुख लक्ष्य भी वीरों के प्रति सम्मान न होकर रसाभिव्यक्ति रही है।

2) **नृत्य से नाट्योत्पत्ति का सिद्धान्त**– पाश्चात्य विद्वान् मैक्डॉनल का मानना रहा है कि– नृत्त् धातु से व्युत्पन्न नृत्य सम्भवतः भारतीय नाटकों की उत्पत्ति का आदि स्रोत है। इनमें शुरुआत में असंस्कृत मूकाभिनय रहा होगा जिनमें शरीर की नृत्यपरक भावभंगिमाओं के साथ मौन अभिनयात्मक संकेत होते होंगे। यही आगे चलकर पूर्ण विकसित नाटकों के रूप में परिष्कृत होता चला गया।

   वेदों में तथा ऐतरेय, कौषीतकि और गोपथ ब्राह्मण जैसे वैदिक वाङ्मय में नृत्य, संगीत एवं चित्रादि, आनुषंगिक कलाओं के विकास के भी प्रमाण प्राप्त होते हैं जिन्हें भारतीय नाटकों का आधार माना जा सकता है।

3) **प्राकृतिक परिवर्तन से नाट्योत्पत्ति का सिद्धान्त**– इस मत के प्रवर्तक कीथ ने यह कहा कि– प्राकृतिक परिवर्तनों को मूर्त रूप में प्रदर्शित करने की इच्छा से ही नाट्य का जन्म हुआ। अपने मत की पुष्टि हेतु इन्होंने महाभाष्य में निर्दिष्ट 'कंसवधम्' नामक नाटक का उदाहरण प्रस्तुत किया। इसमें कृष्णपक्ष रक्तमुख बनकर जबकि कंसपक्ष कालामुख धारण करके अभिनय करते थे। इन्होंने वर्णाधारित इस अभिनय को हेमन्त ऋतु पर वसन्त ऋतु की विजय का प्रतीक माना किन्तु यह सिद्धान्त अधिक स्वीकार्य नहीं हो पाया।

4) **छाया नाटकों से नाट्योत्पत्ति का सिद्धान्त**– डॉ. स्टेन कोनो, डॉ. ल्यूडर्स एवं डॉ. पिशेल ने नाटकों की उत्पत्ति छाया नाटकों से मानी। छाया नाटकों के पात्र रङ्गमंच पर नहीं आते अपितु उनकी छाया पर्दों पर दिखाई जाती है। अपने मत की पुष्टि में इन्होंने बताया कि महाभाष्य में वर्णित 'शौभिक' छाया नाटकों की छाया मूर्तियों के व्याख्याकार थे। यद्यपि पुत्तलियों की छाया के द्वारा नाटकों के प्रदर्शन की परम्परा भारत, इण्डोनेशिया, थाईलैण्ड आदि देशों में रही है किन्तु इन्हें नाटकों के उद्भव से प्राचीन नहीं माना जा सकता। छाया नाटकों का प्राचीनतम उल्लेख महाभारत में प्राप्त होता है। एकमात्र उपलब्ध छाया नाटक 'दूताङ्गद' का समय 13वीं सदी के आस-पास माना जाता है। अतः यह मत भी लोक-समादृत नहीं हो पाया।

5) **उत्सव से नाट्योत्पत्ति का सिद्धान्त**– प्रो. स्टेन कोनो ने अपने ग्रन्थ 'दास इण्डिया ड्रामा' में उल्लेख किया है कि कुछ पाश्चात्य विद्वान् 'मे-पोल नृत्य' जैसे आदिम जातियों में प्रचलित उत्सवों से नाट्य का उद्भव मानते हैं। पाश्चात्य देशों में शिशिर ऋतु के उपरान्त वसन्त ऋतु के आगमन की खुशी में मई मास में किसी खुले मैदान में खम्भा गाड़कर स्त्री-पुरुष उसके चारों ओर नाचते-गाते और उल्लास मनाते हैं। एवमेव भारतीय 'इन्द्रध्वज पर्व' भी 'मे-पोल' का प्रतिरूप है और शीतकाल के बाद होने वाले वसन्तोत्सवों से ही भारतीय नाटकों की उत्पत्ति हुई। भारतीय परम्परा में यह मत भी समादरणीय नहीं हो सका क्योंकि भारतीय 'मे-पोल' आदि को नृत्य मात्र मानते हैं, नाट्य नहीं।

6) **यूनानी रूपकों से नाट्योत्पत्ति का सिद्धान्त**– प्रो. वेबर तथा प्रो. विण्डिश ने इस मत का प्रतिपादन करते हुए बताया कि भारतीय नाट्यों के उद्भव का इतिहास ईसा पूर्व का नहीं है अपितु सिकन्दर के आगमन के पश्चात् यूनानियों के सम्पर्क का परिणाम है। इन्होंने ग्रीक एवं भारतीय नाटकों की विभिन्न समानताओं के आधार पर प्रतिपादित किया कि संस्कृत नाटकों का अङ्कों में विभाजन, पात्रों का सूचनापूर्वक प्रवेश तथा पटाक्षेप से पूर्व निर्गमन, विदूषक एवं प्रतिनायक जैसे पात्र एवं यवनिका शब्द का प्रयोग आदि भारतीय नाटकों पर ग्रीक नाटकों के प्रभाव को सूचित करते हैं। मध्यप्रदेश के सरगुजा मण्डल में प्राप्य 'सीतावेंगा गुफा' की प्रस्तर नाट्यशाला का आकार भी इसी मत की पुष्टि करता है।

किन्तु स्वयं पाश्चात्य विद्वान् पिशेल ने इस मत का प्रबल खण्डन किया और बताया कि भारतीय एवं ग्रीक नाट्यों में समानता से अधिक विषमताएँ हैं। भारतीय नाटकों का सुखान्त होना, अन्वितित्रय का अभाव, इनका वृहदाकार स्वरूप, प्रेक्षागृह में मंचन एवं कोरस का अभाव जैसी विशेषताएँ इन्हें यूनानी नाटकों से नितान्त भिन्न प्रतिपादित करते हैं। जिस 'यवनिका या जवनिका' शब्द के आधार पर यह परिकल्पना आधारित है, चारों ओर से खुले मंच पर खेले जाने के कारण ग्रीक नाटकों में उसका स्वयं अस्तित्त्व नहीं है।

7) **पुत्तलिका नृत्य से नाट्योत्पत्ति का सिद्धान्त**– प्रसिद्ध विद्वान् पंडित शंकर पांडुरंग एवं पिशेल ने सूत्रधार तथा स्थापक पदों की संस्कृत नाट्यों में उपयोगिता के आधार पर पुत्तलिका नृत्यों से ही भारतीय संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति माना। सूत्रधार एवं स्थापक पुत्तलिका नृत्यों में क्रमशः धागों को पकड़ कर नृत्य को संचालित करते हैं एवं नृत्य की गतिविधियों को व्यवस्थित करते हैं। नियन्त्रणकर्त्ता की यही स्थिति नाट्य में सूत्रधारों तथा स्थापकों की होती है किन्तु अधिकांश

विद्वत्परम्परा इसे भारत में ही उत्पन्न एक नृत्यविधा मात्र मानते हुए इससे सम्पूर्ण रस-निर्भर, नाट्याङ्गों से सम्पन्न नाटकों की उत्पत्ति सम्भव नहीं मानते।

8) **इतिहास काव्यों से नाट्योत्पत्ति का सिद्धान्त**– डॉ. कीथ एवं मनमोहन घोष सदृश विद्वान् रामायण एवं महाभारत जैसे इतिहास काव्यों की गायन परम्परा से भी संस्कृत नाट्यों की उत्पत्ति मानते हैं। इनके अनुसार, प्राचीन काल में इन इतिहास काव्यों की कुशिलवों द्वारा गायन परम्परा रही है जिनमें बाद में संवाद एवं अभिनय के जुड़ने से संस्कृत नाट्यों का विकास हुआ।

9) **दैवीय उत्पत्ति का सिद्धान्त**– महामुनि भरत के नाट्यशास्त्र में नाटकों के दैवीय उत्पत्ति से सम्बन्धित एक प्रतीकात्मक कथा दी हुई है जिसके अनुसार– त्रेतायुग के प्रारम्भ होने पर संसार सुख-दुःख, मोह एवं बहुविध जातियों के मिश्रण से व्याकुल हो गया। तब इन्द्रादि देवताओं ने ब्रह्मा से एक ऐसा मनोरंजनात्मक साधन प्रदान करने को कहा जो दृश्य एवं श्रव्य दोनों हो और जिसे सभी वर्ग देख एवं सुन सकें।

क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यंच यद् भवेत्।
न वेदव्यवहारोऽयं संश्राव्यः शूद्रजातिषु।
तस्मात् सृजापरं वेदं पंचमं सार्ववर्णिकम्।।

– नाट्यशास्त्र, 1/11-12

देवों की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अर्थवेद से क्रमशः पाठ्य, गीत, अभिनय एवं रस लेकर पंचमवेद रूपी सार्ववार्णिक नाट्यवेद की रचना की।

जग्राह्यपाठ्यमृग्वेदात् सामभ्यो गीतमेव च।
यजुर्वेदादभिनयान् रसादथर्वणादपि।।

– नाट्यशास्त्र, 1/17

भरतमुनि ने अपने सौ पुत्रों सहित ब्रह्मा की सभा में सर्वप्रथम इसका प्रयोग दिखाया जिसमें भारती, आरभटी तथा सात्त्वती नामक तीन ही वृत्तियाँ थीं। आगे चलकर बृहस्पति ने इसमें कैशिकी-वृत्ति को भी जोड़ दिया जिसके बाद अप्सराओं से युक्त चारों वृत्तियों वाले नाट्य का प्रथम प्रयोग 'इन्द्रध्वजोत्सव' के अवसर पर भरत ने प्रस्तुत किया। दानवों जैसे विघ्नों से रक्षा हेतु बाद में ब्रह्मा के कहने पर विश्वकर्मा ने इसके लिए 'प्रेक्षागृह' का निर्माण किया जिसमें सर्वप्रथम अभिनीत रूपक 'त्रिपुरदाह' नामक 'डिम' तथा 'समुद्रमन्थन' नामक 'समवकार' थे।

10) **संवाद सूक्तों से नाट्योत्पत्ति का सिद्धान्त**– मैक्समूलर सिल्वाँ लेव्ही, फॉन श्रोएदर एवं हर्टल जैसे विद्वानों ने इस मत को प्रतिपादित किया कि भारतीय नाट्य का विकास ऋग्वेद में प्राप्य सरमा-पणि, पुरुरवा-उर्वशी, यम-यमी, विश्वामित्र-नदी, अगस्त्य-लोपामुद्रा तथा नेमि-इन्द्र जैसे संवाद सूक्तों से हुआ है। ये सूक्त वस्तुतः वैदिक कर्मकाण्ड से सम्बद्ध नहीं हैं अतः यह मान्यता है कि ये ऋषियों के मनोरंजनार्थ रचे गए थे जिनमें संवादात्मक रूप में भावनाओं के आवेग एवं विभिन्न मनोदशाएँ आमने-सामने आती हैं। इस प्रकार ये सूक्त अपने आप में छोटे-छोटे नाटक कहे जा सकते हैं।

वैदिक यज्ञ वस्तुतः कर्मकाण्ड मात्र न होकर, तत्कालीन समाज की समस्त रचनात्मक गतिविधियों के प्रतिनिधि थे। इनमें कर्मकाण्डों के अतिरिक्त संगीत, नृत्य, गीत, काव्य एवं नाट्य जैसे सभी आनुषंगिक कलाओं के विकास के प्रमाण मिलते हैं। यजुर्वेद के तीसरे अध्याय में यज्ञ में 'शैलूष' (गायन), 'सूत' (नर्तन), 'वैणिक' (वीणावादक), 'मार्दंगिक' (मृदंगवादक), 'वांशिक' (बाँसुरी वादक) आदि के उल्लेख प्राप्त होते हैं जो एक प्रकार की नटमंडली के स्वरूप को उपस्थित कर देते हैं। श्रौतसूत्रों में उल्लिखित पितृमेध यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ तथा वाजपेय यज्ञों में नृत्य, गीत एवं वीणावादन का अनिवार्य स्थान था। शतपथ ब्राह्मण के निर्देशानुसार अश्वमेध यज्ञ के घोड़े को छोड़ देने के बाद उसी स्थान पर 360 दिनों में 10-10 दिनों के 36 आख्यान सुने-सुनाए जाते थे। वैदिक मन्त्र पाठ के साथ हाथों के लयबद्ध संचालन में भी नाट्यों के आंगिक अभिनयों के बीज तलाशे जा सकते हैं।

यद्यपि उपर्युक्त सभी सिद्धान्तों पर तत्तद् प्रदेशों में प्रचलित मान्यताओं एवं नाट्य परम्पराओं का प्रभाव रहा है तथापि मैक्डॉनल के इस मत को निष्कर्ष स्वरूप ग्रहण किया जा सकता है कि "भारत में नाटकीय साहित्य के सर्वप्राचीन स्वरूपों का प्रतिनिधित्व ऋग्वेद के उन सूक्तों द्वारा होता है जिनमें संवाद विद्यमान हैं।"

1.3 संस्कृत नाटकों का विकास

संस्कृत नाटकों के विकास में लोकजीवन, लोकपरम्पराएँ, बहुविध उत्सवों के साथ-साथ वैदिक साहित्य एवं वैदिक यज्ञानुष्ठानों की निश्चितरूपेण महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इसके उद्भव एवं विकास यात्रा को सुविधार्थ अग्रलिखित चार वर्गों में समायोजित किया जा सकता है–

1) **अंकुरण काल (प्रागैतिहासिक काल)**– अपने अन्तर्निहित भावनाओं की बाह्याभिव्यक्ति की प्रवृत्ति सृष्टि के आदिकाल से ही मानवों में रही है। प्राकृतिक एवं सामाजिक सम्बन्धों से उत्पन्न बहुविध भावों की अभिव्यक्ति के अनेकानेक माध्यमों में नृत्य एवं नाट्य भी अन्यतम रहा है। अतः भारत जैसी प्राचीन संस्कृति में प्रागैतिहासिक काल को ही नाटकों की उत्पत्ति का अंकुरण काल माना जा सकता है जिनके प्राचीनतम संकेत ईसा के कई हजार साल पूर्व बनाए गए शैलगुफाओं के चित्रों में प्राप्त होते हैं। **भीमबेठका** या **बादामी** के प्रागैतिहासिक शैलगुफाओं के चित्र इनमें प्रमुख हैं।

2) **उद्भव काल (वैदिक काल)**– वैदिक काल को संस्कृत नाटकों का उद्भव काल माना जा सकता है जबकि हमें नाटकों हेतु पाठ्य-सामग्री, संगीत-तत्त्व, अभिनय एवं रस-तत्त्वों की क्रमशः ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेदों से उपलब्धता हो जाती है। विभिन्न आख्यानोपाख्यानों एवं वैदिक कर्मकाण्डों के आनुषंगिक नृत्य, गीतादियों में भी नाटकों के उद्भव के पर्याप्त संकेत प्राप्त होते हैं। संवाद सूक्तों की प्रस्तुतियों एवं सूत जाति के उदय ने नाट्य के विकास में अग्रणी भूमिका का निर्वहन किया। आगे चलकर इसी सूत ने नाटकों के सूत्रधार का रूप धारण किया–

स्थपतिर्बुद्धिसम्पन्नो वास्तुविद्याविशारदः।
इत्यब्रवीत् सूत्रधारः सूतः पौराणिकस्तथा।।

महाभारत, आदिपर्व, 51/15

3) **विकास काल (इतिहास काल)**– रामायण, महाभारत एवं पुराणों के काल को इतिहास काल कहा जाता है जिनमें संस्कृत नाटकों एवं रङ्गमंचीय परम्परा के समृद्ध रूपों के सुस्पष्ट प्रमाण हमें प्राप्त होते हैं। विभिन्न उत्सवों में नाटकीय प्रस्तुतियाँ होने लगती हैं एवं वैदिक यज्ञों का सूत स्पष्टतया नाटकों के सूत्रधार के रूप में अवतरित हो चुका है। आख्यानों के प्रस्तौता 'ग्रंथिक' एवं गायक 'कुशिलवों' की परम्पराओं का प्रचलन में आना, नाट्यकला एवं सौन्दर्यशास्त्र से सम्बद्ध शब्दावलियों का विकास, रस, नट, नर्तक, नाटक, प्रेक्षा, लय, ताल जैसे शब्दों की बहुतायत में उपलब्धता भी नाटकों की विकसित परम्पराओं के द्योतक प्रतीत होते हैं।

4) **समृद्धि काल (बौद्धकाल से अद्यावधि)**– 600 ई.पू. के बाद रचित बौद्ध एवं जैन साहित्यों, कौटिल्य के अर्थशास्त्र, पाणिनि, पतंजलि, रामायण एवं महाभारत आदि साहित्यों में नाटकों की विकसित अवस्था के संकेत हमें प्राप्त होते हैं। बौद्ध जातक कथाओं, जैनागमों, कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा वात्स्यायन के कामसूत्र में विभिन्न नटमंडलियों की चर्चायें मिलती हैं।

इस समय पूर्ण विकसित नाटकों एवं तत्सम्बन्धी शास्त्रग्रन्थों की रचना की जाने लगी। पाणिनि ने 'नटसूत्र' नामक ग्रन्थ का उल्लेख किया है जबकि पतंजलि ने 'शौभिक' तथा 'ग्रंथिक' नामक नटों की प्रस्तुतियों का वर्णन और 'कंसवधम्' एवं 'बलिवधम्' नामक नाटकों के खेले जाने का भी उल्लेख किया है। भरतमुनि ने भी नाट्यशास्त्र में 'समुद्रमंथन' (समवकार) तथा 'त्रिपुरदाह' (डिम) रूपी दो रूपकों का उल्लेख किया है। विकास की इसी धारा से आगे चलकर 'भास', 'कालिदास', 'अश्वघोष' जैसे नाटककारों का जन्म हुआ जिनकी नाट्य रचनाओं ने कवित्व की ऐसी कसौटी तैयार कर दी जिसके आधार पर कहा गया– **'नाटकान्तं कवित्वम्'**।

1.4 संस्कृत नाटकों की विशेषतायें

संस्कृत नाटकों का विकास भारतीय परिवेश में यहाँ के वातावरण एवं लोकजीवन के आधार पर हुआ। यही कारण है कि आनन्द को जीवन का सर्वस्व मानने वाली भारतीय मनीषा ने नाटकों का मुख्य उद्देश्य रसानुभूति ही माना। धनंजय कहते हैं–

आनन्दनिस्स्यन्दिषु रूपकेषु व्युत्पत्तिमात्रं फलमल्पबुद्धिः।
योऽपीतिहासादिवदाह साधुस्तस्मै नमः स्वादुपराङ्गमुखाय।।

अर्थात् आनन्द की धारा प्रवाहित करने वाले रूपकों में इतिहासादि विषयों की व्युत्पत्ति देखने वाले अल्पबुद्धि वस्तुतः रस से विमुख मानस हैं।

वस्तुतः संस्कृत नाटक मनोरंजन प्रधान एवं आनन्दपरक होते हैं। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप नाटककार इनका प्रारम्भ मंगलपरक और आशीर्वादात्मक पंक्तियों से करते हैं एवं अन्ततोगत्वा आनन्द की सीमा को स्पर्श करते हुए **'सद्यः परनिर्वृत्ति'** के लक्ष्य को प्राप्त कराते हैं तभी तो नाट्यशास्त्र के आद्याचार्य भरत ने इसे दुःखी, श्रान्त, शोकाकुल एवं तपःखिन्न लोगों को विश्रान्ति प्रदायक माना है–

दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्।
विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति।।

आनन्दानुभूति के अतिरिक्त भी संस्कृत नाटकों की अनेकानेक विशिष्टताएँ हैं जिन्हें अग्रलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है–

1) **सुखान्तता**– भारतीय नाटकों का चरम उद्‌देश्य प्रेक्षकों की आनन्दानुभूति ही रही है। यही कारण है कि यहाँ नाटकों की दुःखान्तता स्वीकार्य नहीं रही। इनमें लोक जीवन के घात-प्रतिघात, दुःख, शोकादि का व्यापक अस्तित्त्व होने के बावजूद आशावादिता का केन्द्रीय सूत्र अनुस्यूत मिलता है। यह भारतीय दर्शन की आशावादिता का ही प्रभाव है कि उत्तररामचरितकार 'भवभूति' ने वाल्मीकि की दुःखान्त घटना को भी अपने नाटक में सुखान्त बना दिया।

   ब्रह्मानन्दसहोदर 'रस' को ही नाट्य की आत्मा स्वीकार करने वाली भारतीय संस्कृति में रचित नाटक प्रायः आदर्शवादी हैं जो जीवन का अवसान सुख में देखती है।

2) **बहुभाषायी शिल्पविधान**– 'साहित्य समाज का दर्पण है'– इसको सही मायने में संस्कृत नाटक चरितार्थ करते हैं। पाणिनि से कुछ पूर्व से ही संस्कृत बोलचाल की भाषा के रूप में शिष्ट जनों के बीच सिमट कर रह गई थी। समझ सकने में समर्थ होने पर भी सामान्यजन के दैनन्दिन प्रयोग की भाषा प्राकृत थी। ऐसे में नाट्यसाहित्य ने लोक की अन्य भाषाओं को भी अङ्गीकार कर इसे लोकजीवन से जोड़े रखा। इनमें उत्तम कोटि के पात्र संस्कृत बोलते हैं जबकि स्त्रियाँ एवं अन्य पात्र क्षेत्रीय प्राकृत। 'मृच्छकटिकम्' में हमें कई भाषाओं का प्रयोग प्राप्त होता है।

3) **विदूषक की परिकल्पना**– संस्कृत नाटकों की विदूषक की परिकल्पना भी अनूठी है जो यूरोपीय नाटकों के 'फूल' (मूर्ख) से नितान्त भिन्न एवं विशिष्ट है। 'फूल' जहाँ एकमात्र 'हास्य' का उपादान करता है वहीं विदूषक नायक को विपत्तियों से बचाने वाला मित्र, सान्त्वना देने वाला सखा तथा यथासमय उचित मन्त्रणा देने वाला मन्त्री भी होता है। यही कारण है कि भरत ने इसे साक्षात् ओंकार से रक्षित माना है– **विदूषकमथोङ्कारः।**

4) **विशिष्ट पात्र योजना**– संस्कृत नाटकों में दिव्य, अदिव्य एवं दिव्यादिव्य– तीनों प्रकार के पात्र होते हैं। दिव्य पात्र भी यहाँ अदिव्य मर्त्यों की भाँति सुख-दुःख, ईर्ष्या-द्वेष, स्नेह-वैराग्यादि से ओत-प्रोत हो सकते हैं, जो चमत्कारों के द्वारा चित्त के साधारणीकरण के माध्यम से रसों के रसास्वाद की भावभूमि तैयार करते हैं।

5) **कथानक की मौलिकता**– संस्कृत नाटकों के कथानक मूलतः प्रख्यात एवं कविकल्पित दो प्रकार के होते हैं। प्रख्यात कथानकों में भी रस एवं चरित्र के उत्कर्ष को लक्ष्य में रखकर परिवर्तन, परिवर्धन तथा नवीनीकरण का अवकाश यहाँ होता है। फलतः मौलिकता एवं लोकानुरूपिता बनी रहती है। महाभारत के कथानक पर आधारित कालिदास प्रणीत 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' को इस सन्दर्भ में उदाहरणस्वरूप देखा जा सकता है।

6) **अन्वितित्रय का अभाव**– भारतीय नाटकों में सिर्फ कार्यान्विति का ध्यान रखा जाता है। अलग-अलग अङ्कों का दृश्य भिन्न-भिन्न स्थानों पर होने तथा जन्म-जन्मान्तर की कथाओं के कारण स्थानान्विति एवं कालान्विति का विशेष ख्याल नहीं रखा जाता।

7) **कोरस का अभाव**– संस्कृत नाटक चूँकि मूलतः सुखान्त होते हैं अतः दुःखान्त ग्रीक नाटकों की भाँति इनमें कोरस का नितान्त अभाव पाया जाता है।

8) **अमर्यादित क्रियाओं का वर्जन**– सामाजिक मर्यादा एवं औचित्य की दृष्टि से रंगमंच पर युद्ध, मृत्यु, निद्रा, सम्भोग, शाप, चुम्बन आदि का प्रदर्शन भारतीय परम्परा में वर्जित माना जाता है। कथानक की स्पष्टता हेतु अनिवार्य होने पर ऐसे क्रियाओं के संसूचनार्थ 'विष्कम्भक', 'प्रवेशकादि' जैसे अर्थोपक्षेपकों का प्रावधान प्राप्त होता है।

9) **कथानकों का विकास**– संस्कृत नाटकों के प्रारम्भ एवं अन्त की एक विशिष्ट पद्धति है। प्रायः सभी संस्कृत नाटकों का प्रारम्भ आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक 'मंगलाचरण' से होता है। ऐसे ही अन्त भी समस्त विश्व की मंगलकामना वाले 'भरतवाक्य' से होता है। अर्थप्रकृतियों, कार्यावस्थाओं एवं सन्धियों के अन्तर्गत कथानकों का स्वाभाविक विकास भी नियमाधीन होता है।

10) **तात्त्विक समन्वय**– वस्तु, नेता एवं रस– ये तीनों नाट्य के प्रमुख तत्त्व माने गए हैं, जिनमें रस का स्थान सर्वोच्च माना गया है। रस की इस घोषित सर्वोच्चता के बावजूद तीनों तत्त्वों की समन्वयात्मक संश्लिष्टता को आवश्यक माना जाता है जो भारतीय नाटकों की विशिष्टता है। धनंजय ने कहा है–

न चातिरसतो वस्तु दूरं विच्छिन्नतां नयेत्।
रसं वा न तिरोदध्याद्वस्त्वलंकारलक्षणैः।।

11) **प्रेक्षागृह की अनिवार्यता**– भारतीय नाटकों का मंचन प्रेक्षागृहों में चुने हुए सामाजिकों के बीच करने का विधान रहा है न कि ग्रीकादि नाटकों की भाँति खुले मैदान में। नाट्यशास्त्र के द्वितीय अध्याय में विभिन्न प्रकार के प्रेक्षागृहों के निर्माण का विस्तृत विधान वर्णित है।

उपर्युक्त विशेषताओं से युक्त 'संस्कृत नाटकों' का प्रारम्भिक स्वरूप आसान हुआ करता था किन्तु मंचन की दृष्टि से यह धीरे-धीरे कठिन होता गया लेकिन कुछ आधुनिकताओं को अपनाने के बावजूद आज भी संस्कृत नाटक निर्धारित नियमों का पालन करते हुए अपने विशिष्ट मनोरंजक स्वरूप को बनाए हुए है।

बोध प्रश्न–1

1) निम्नलिखित में से नाटकों की उत्पत्ति विषयक भारतीय मत है–

(क) वीरपूजा (ख) मे-पोल नृत्य

(ग) ऋग्वैदिक संवादसूक्त (घ) ग्रीक नाटक

2) अधोलिखित में से संस्कृत नाटकों की विशेषता नहीं है–

(क) विदूषक की परिकल्पना (ख) भरतवाक्य से समाप्ति

(ग) अन्वितित्रय का अभाव (घ) कोरस की अनिवार्यता

3) वीरपूजा के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था –

(क) रिजवे (ख) मैक्डॉनल

(ग) स्टेन कोनो (घ) वेबर

4) रिक्त स्थानों की पूर्ति करें–

(क) नाट्यशास्त्र के आदि प्रणेता .... माने जाते हैं।

(ख) दैवीय सिद्धान्त संस्कृत नाटकों का प्रथम स्रोत .... देवता को मानता है।

(ग) नाट्य शब्द .... धातु से बना है।

(घ) संस्कृत नाटकों का प्रारम्भ .... होता है।

अभ्यास प्रश्न–1

1) संस्कृत नाटकों की उत्पत्ति एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

2) संस्कृत नाटकों की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

1.5 प्रमुख संस्कृत नाटकों का परिचय

प्रिय छात्रों! इकाई के इस अंश में आप संस्कृत साहित्य के प्रमुख नाटकों का परिचय प्राप्त करेंगे।

1.5.1 स्वप्नवासवदत्तम्

महान् नाटककार भास विरचित तेरह नाटकों में अपनी कथासौन्दर्य, संविधानकौतुक एवं नाटकीयता की दृष्टि से यह सर्वश्रेष्ठ नाटक है जो ईसा पूर्व चौथी-पाँचवीं सदी में संस्कृत नाटकों की विकसित परम्परा का परिचायक है। उदयन कथा पर आधारित छः अङ्कों में उपनिबद्ध इस नाटक को घटनाक्रम की दृष्टि से 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण' का परवर्ती भाग माना जाता है। मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा वासवदत्ता के अग्नि में जलकर भस्म हो जाने का प्रवाद फैलाकर उदयन का मगधराज पुत्री पद्मावती से विवाह और छिने हुए राज्य की पुनर्प्राप्ति इस नाटक में वर्णित है। नाटक का नामकरण, नाटकीय कौशल की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण 'स्वप्नदृश्य' के आधार पर किया गया है। नाटकीय विडम्बनाओं, विसंगतियों के साथ-साथ कथोपकथन, चरित्र-चित्रण, रसोन्मेष तथा नाटकीय संविधान– सभी दृष्टियों से यह नाट्य जगत् की एक अमूल्य धरोहर है।

1.5.2 मृच्छकटिकम्

समाज के मध्यवर्गीय जीवन पर आधारित 'मृच्छकटिकम्' संस्कृत नाट्य साहित्य की एक अद्भुत रचना है। प्रकरण के सभी शास्त्रीय लक्षण इसमें अक्षरशः घटित होते हैं। इसके रचयिता शूद्रक के जीवन एवं काल के विषय में मतैक्य नहीं है। अधिकांश परम्परा इन्हें राजा शूद्रक से अभिन्न मानती है एवं इनका समय ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी स्वीकार किया जाता है।

धीरशान्त कोटि का नायक चारुदत्त एवं गणिका नायिका वसन्तसेना का प्रणय इसमें प्रमुख कथा के रूप में वर्णित है साथ ही शर्विलक एवं मदनिका की प्रेमकथा तथा उज्जयिनी के राजा पालक एवं आर्यक की राजनीतिक कथाएँ भी परस्पर इस प्रकार संश्लिष्ट हैं कि उन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। घटनाओं की निरन्तरता एवं गत्यात्मकता औत्सुक्य को बनाए रखता है फलतः पाठक कभी भी उसके आकर्षण से अपने को दूर नहीं कर पाते। 'मृच्छकटिकम्' मध्यवर्ग के सुख-दुःख, आशा-निराशा, हर्ष-शोक को उजागर करने के कारण जनसामान्य से हृदय संवाद कर पाने में समर्थ है। रंगमंच पर प्रस्तुतिकरण की दृष्टि से यह अत्यन्त लोकप्रिय संस्कृत नाटकों में एक है।

चरित्र-चित्रण की सफलता, संवादों की सजीवता, लोकोक्तियों का सुन्दर प्रयोग, शौरसेनी, मागधी, प्रच्यादि 7 प्रकारों के प्राकृत की उपलब्धता एवं वैदर्भी रीति के अनुकूल सरल, स्पष्ट तथा अकृत्रिम भाषा-शैली का प्रयोग– इस शृंगार रस प्रधान 'प्रकरण' को सही अर्थों में क्रान्तिकारी बनाता है।

1.5.3 मालविकाग्निमित्रम्

कालिदास के तीनों ही नाटकों से हमें उनके जिस परिनिष्ठित लोकव्यवहार एवं सांसारिक अनुभव की प्रतीति होती है, मालविकाग्निमित्रम् उनकी उस नाट्यकला का अंकुर है। इस नाटक का अङ्गीरस शृंगार है। प्रेम के विभिन्न मनोदशाओं का हृदयस्पर्शी वर्णन मालविकाग्निमित्रम् में हमें प्राप्त होता है।

पाँच अङ्कों में उपनिबद्ध यह 'नाटक' शास्त्रीय दृष्टि से 'नाटिका' नामक उपरूपक के अधिक करीब जान पड़ता है। कथानक ऐतिहासिक न होने पर भी इसके पात्र ऐतिहासिक हैं क्योंकि इसका नायक शुंगवंशीय पुष्यमित्र (185 ई.पू.) का पुत्र 'अग्निमित्र' है।

कथा के अनुसार, दुर्भाग्यवश विदर्भराज की पुत्री मालविका, अग्निमित्र की रानी धारिणी की दासी बनकर रह रही है। स्त्रीसुलभ ईर्ष्या के कारण धारिणी उसके रूप-सौन्दर्य से सशंकित रहती हुई उसे राजा अग्निमित्र की नजरों से बचाकर रखती है किन्तु मालविका के चित्रदर्शन से राजा उसके रूपलावण्य पर अनुरक्त हो मिलने की योजना बनाता है। इस योजना में उसका नर्मसचिव विदूषक उसकी मदद करता है। राजा के इस प्रणय से उसकी दोनों पूर्ववर्ती रानियाँ धारिणी एवं इरावती उससे ईर्ष्या करती हैं एवं बारम्बार उनके मिलन के प्रयत्नों में विघ्न डालती हैं। अन्तिम अङ्क में विदर्भ से आई सेविकाओं से मालविका का वास्तविक परिचय प्राप्त होने पर स्वयं महारानी धारिणी अग्निमित्र एवं मालविका का पाणिग्रहण करवा देती है।

राजप्रासादों के प्रणयसम्बन्धी षड्यन्त्रों का सजीव चित्रण करने वाला एवं राजघरानों की कामुकता पर तीखा व्यंग्य प्रहार करने वाली यह रचना परवर्ती काल में रत्नावली, कर्पूरमंजरी तथा चन्द्रकला जैसी नाटिकाओं की मार्गदर्शक बनी।

1.5.4 अभिज्ञानशाकुन्तलम्

'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला।'–जैसी प्रशस्तियों से सम्मानित अभिज्ञानशाकुन्तलम् सात अङ्कों में उपनिबद्ध नाट्यसाहित्य की सर्वोत्तम निधि माना जाता है। इसमें पुरुवंशी राजा दुष्यन्त तथा महर्षि कण्व की पालिता पुत्री शकुन्तला के

प्रणय, वियोग एवं पुनर्मिलन की कथा के माध्यम से भारतीय जीवन दृष्टि एवं आदर्शों को रसपेशल रूप में अभिव्यक्त किया गया है।

'त्याग, तपस्या एवं तपोमय जीवन' को भारतीय संस्कृति के आदर्श के रूप में स्थापित करने वाले इस नाटक में कालिदास ने महर्षि कण्व एवं मारीच के वचनों में प्रतिफलित उदात्त मूल्यबोध के द्वारा नगरीय संस्कृति के समानान्तर आश्रमों की सांस्कृतिक प्रतिष्ठा के द्वन्द्व को उभारने की सुन्दर कोशिश की है। 'श्रृंगार' को रसराज मानकर उसे इस नाटक का अंगीरस बनाने के बावजूद कालिदास ने इसमें 'अमर्यादित-श्रृंगार' को दण्डित किया है और त्याग एवं तपस्या में जब हृदयगत कलुषित भावनाएँ दग्ध हो जाती हैं तो प्रणयी नायक-नायिका का पुनर्मिलन दिखलाकर पाठकों एवं दर्शकों को कान्तासम्मित शैली में सामाजिक मर्यादा का पाठ पढ़ाया है।

नाटक के कथानक का मूलस्रोत महाभारत का 'शकुन्तलोपाख्यान' है जिसमें भारतीय सांस्कृतिक मर्यादा एवं नाट्यशीलता की दृष्टि से कतिपय परिवर्तन तथा परिवर्धन करके कालिदास ने इस नाटक को चमत्कारिक एवं विश्ववन्द्य बना डाला है। 'दुर्वासा शाप' की कल्पना कविकृत ऐसा ही एक परिवर्तन है जिसने न केवल नाटक के नामकरण की आधार भूमि तैयार की अपितु नायक-नायिका के दूषित प्रतीत हो रहे चरित्र को उबारने एवं उभारने का भी कार्य किया। 'पद्मपुराण' में भी किंचित् परिवर्तनों के साथ यह कथा पायी जाती है। चतुर्थ एवं पंचम अङ्क इस नाटक का प्राण है। चतुर्थ अङ्क में मानव मन की भावनाओं एवं कोमल अनुभूतियों का संचार रचते हुए कालिदास ने बन्धुओं की चिन्ता, पितृहृदय की वेदना, जामाता के लिए आदर्श सन्देश कथन, पतिगृह के लिए प्रस्थान कर रही पुत्री को आदर्श शिक्षा एवं सान्त्वना जैसे कालातीत सांस्कृतिक तत्त्वों को भावानुकूल भाषा-शैली के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए इस नाटक को विश्व साहित्य के शिखर पर पहुँचा दिया।

नाटक होते हुए भी एक श्रेष्ठ काव्य की भाँति व्यंग्यात्मकता, घटनासंयोजन में अद्वितीय सौष्ठव, चरित्रों का द्वन्द्वात्मक विकास एवं पात्रानुकूल भाषा-शैली इस रचना को विशिष्ट ऊँचाई प्रदान करती है।

प्रकृति का मानवीकरण, मानवीय मनोविज्ञान का गहन चित्रण, प्रेमसम्बन्धों की अन्तरङ्ग परीक्षा, आतिथ्य सेवा की महत्ता जैसे शाश्वत सांस्कृतिक मूल्यों को अर्थप्रकृतियों, कार्यावस्थाओं एवं सन्धियों के माध्यम से नाटकीय कलेवर में प्रस्तुत करने वाली यह रचना विश्व साहित्य का ग्रन्थरत्न है।

1.5.5 मुद्राराक्षसम्

'विशाखदत्त' प्रणीत मुद्राराक्षस नाटक, नाट्यशास्त्र विषयक परम्परागत रूढ़ियों से अलग हटकर लिखी गयी एक क्रांतिकारी नाट्यरचना है जिसका काल लगभग चौथी सदी का उत्तरार्ध अथवा पाँचवीं सदी का पूर्वार्ध माना जा सकता है।

सात अंकों में विभाजित इस नाटक का कथानक ऐतिहासिक है क्योंकि चाणक्य, चन्द्रगुप्त, आमात्य राक्षसादि की ऐतिहासिकता असंदिग्ध है। कार्यान्विति की दृष्टि से असंख्य घटनाओं की पारस्परिक अन्विति तथा उनकी तार्किक परिणति पूर्णतः विशाखदत्त की प्रतिभा एवं कल्पनाशक्ति का चमत्कारिक निदर्शन है। धनिक ने इसके कथानक को प्रख्यात कोटि का बताकर 'बृहत्कथा' को इसका मूलस्रोत प्रतिपादित किया है। अर्थप्रकृतियों, कार्यावस्थाओं एवं सन्धियों का समुचित प्रयोग करते हुए

नाट्यव्यापार को गत्यात्मक बनाए रखा गया है। हास्योल्लास की योजना से रहित नाट्य का वातावरण आद्योपान्त गम्भीर है। इस गम्भीरता, स्त्रीपात्रों की न्यूनता एवं विदूषक के अभाव के बावजूद नाटक की रोचकता एवं आकर्षण में कोई कमी नहीं आ पाई है।

राजनैतिक संघर्ष जैसे नवीन विषय को केन्द्र में रखकर सात अङ्कों में निबद्ध इस नाटक में दो अत्यन्त चतुर मन्त्रियों के बुद्धिसंघर्ष की रोचक तथा उत्तेजनापूर्ण कहानी है। चाणक्य चन्द्रगुप्त के राजत्व को तब तक स्थायी नहीं मानता जब तक नन्दों का स्वामीभक्त एवं पराक्रमी अमात्य राक्षस उसके विरोध में डटा हुआ है। चाणक्य उसी स्वामीभक्त राक्षस को वश में करके उसे चन्द्रगुप्त का महामन्त्रीत्व स्वीकार करवाना चाहता है। इसी उद्देश्य को लेकर ग्रथित कूटनीतिक संघर्ष में आचार्य चाणक्य की सफलता नाट्य की केन्द्रीय कथावस्तु है। राक्षस को वशवर्ती बनाने में उसके नामांकित मुद्रा की निर्णायक भूमिका के कारण नाटक का नामकरण 'मुद्राराक्षसम्' किया गया है।

नाटक का अंगीरस 'वीर' है। प्रमुख पात्रों के चरित्रों को परस्पर द्वन्द्वात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया है। चाणक्य जहाँ स्थिरचित्त, सावधान, दृढ़व्रत, लक्ष्यसिद्धि के प्रति कठोर, कूटनीतिज्ञ, बुद्धिप्रधान चरित्र है जो अपनी बुद्धि को सहस्त्र सेनाओं से भी प्रबल मानता है वहीं राक्षस भावनाप्रधान, अस्थिरचित्त, विस्मरणशील, असावधान, उदारहृदय एवं मित्रवत्सल चरित्र है जिसमें चाणक्य की भाँति आत्मविश्वास का भी अभाव है। ऐसे ही चन्द्रगुप्त जहाँ आचार्य चाणक्य पर सच्चा विश्वास करने वाला, उनके आदेशों को पत्थर की लकीर मानने वाला है वहीं मलयकेतु राक्षस पर सन्देह करने वाला, अस्थिर चित्त एवं अविवेकी व्यक्तित्त्व है।

चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य में किसे इसका नायक माना जाये इसके विषय में भी मतैक्य नहीं है तथापि फलागम की प्राप्ति एवं सर्वात्मना श्रेष्ठत्व के कारण चाणक्य को ही नाटक का नायक माना जाना चाहिए।

इस प्रकार, पताकास्थानकों की योजना से संवादों में चमत्कार भरने वाला, अपने छोटे से छोटे पात्रों को भी व्यक्तित्व प्रदान करने वाला, काव्यात्मकता के अतिरेक से मुक्त, नाटकीयता की निर्माण क्षमता में समर्थ, पैनी भाषा-शैली जैसी विशिष्टताओं से संवलित यह संस्कृत नाट्यजगत का अनूठा नाटक है।

1.5.6 वेणीसंहारम्

संस्कृत भाषा में युद्ध को केन्द्र में रखकर रचे गए नाटकों में 'भट्टनारायण' रचित 'वेणीसंहार' नाटक अपना विशिष्ट स्थान रखता है। मूलतः कन्नौज के रहने वाले ब्राह्मण भट्टनारायण बंगाल में 'सेनवंश' के संस्थापक 'आदिशूर' के निमन्त्रण पर वहाँ जाकर बस गए तदनुरूप इनका काल 7वीं सदी का उत्तरार्ध माना जाता है। गुरुवर रवीन्द्रनाथ टैगोर की वंशावली के अनुसार इन्हें उनके वंश का आदि पुरुष माना जाता है।

नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से महाभारत पर आधारित इसकी कथावस्तु प्रख्यात कोटि की है। महाभारत युद्ध का सम्पूर्ण चित्र इसमें अपनी विशिष्टताओं, वैभवों एवं प्रपंचों के साथ उपस्थित हो पाया है। बड़े कथानक एवं वर्णनात्मकता की अधिकता के कारण कथानक के विकास में शिथिलता देखने को मिलती है।

भीम के द्वारा दुर्योधन की जंघाएँ तोड़कर उसके रक्त से द्रौपदी के केश सँवारने की प्रतिज्ञा इस छः अङ्कों में उपनिबद्ध नाटक का बीज है, जिसकी पूर्ति के साथ ही नाटक समाप्त होता है। इस दृष्टि से यह नाटककार की निजी कल्पना का चमत्कार है क्योंकि मूल महाभारत में इसके स्थान पर दुर्योधन के उरुभङ्ग की प्रतिज्ञा है। प्रथम से छठें अंक तक युद्धक-प्रसंगों का बहुतायत है किन्तु नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से ऐसे दृश्यों के प्रदर्शन का निषेध होने के कारण नाटककार ने अर्थोपक्षेपकों जैसे नाट्यशास्त्रीय साधनों का उपयोग कर कथानक के संयोजन में अपूर्व दक्षता का परिचय दिया है।

नाटक का अंगीरस वीर है जिसके लिए प्रधानतः गौड़ी रीति का सहारा लिया गया है। सभी पात्रों का चरित्र-चित्रण स्वाभाविक प्रतीत होता है।

भीम को ही इसका नायक माना जा सकता है। यह नाटक महायुद्ध की विभीषिका का दारुण चित्र प्रस्तुत करता है। वस्तुतः मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों के रूप में प्रतिशोध एवं हिंसा के भावों का ऐसा प्रभावशाली चित्रण करने वाला संस्कृत में शायद ही कोई नाटक है।

1.5.7 उत्तररामचरितम्

आचार्य भवभूति संस्कृत साहित्य की विलक्षण विभूति हैं, जिनके नाटक 'उत्तररामचरितम्' में नाट्यकला का चूड़ान्त निदर्शन प्राप्त होता है। राम के राज्याभिषेक के उत्तरवर्ती लोकोत्तर चरित को चित्रित करने वाले सात अङ्कों में निबद्ध इस नाटक में सीता परित्याग से पुनर्मिलन तक का वृत्तान्त वर्णित है। नाट्यशास्त्र की स्थापित परम्पराओं एवं समाज की प्रचलित मान्यताओं की लकीर पर न चलते हुए इन्होंने नाट्य के पुराने शरीर में नवीन आत्मा को संस्थापित करने का साहसपूर्ण कार्य किया है।

इस नाटक के कथानक का आधार वाल्मीकि रामायण है। यद्यपि कुछ परम्पराएँ 'पद्मपुराण' को भी इसका आधार मानती हैं। कालक्रम की दृष्टि से पद्मपुराण की कथा को ही उत्तररामचरित पर आधारित माना जाना चाहिए क्योंकि भवभूति का समय 7वीं सदी का उत्तरार्ध माना जाता है जबकि पद्मपुराण का 'पाताल-खण्ड' बाद की रचना है। इन्होंने नाट्यशास्त्र की स्थापित परम्परा से अलग हटकर 'करुण रस' को अपनी कृति का आधार बनाया एवं उसका ऐसा प्रभावोत्पादक वर्णन किया जिसकी तुलना संसार के साहित्य में कहीं नहीं मिलती। **'अपि ग्रावा रोदितीति दलति वज्रस्य हृदयम्'** के रूप में पत्थरों को भी रुला देने वाले इस करुणा की वजह से ही परवर्ती काल में– **'कारुण्यं भवभूतिरेव तनुते'** तथा **'एको रसः करुणमेव'** जैसी उक्तियाँ विद्वत्परम्परा में स्थापित हो गईं।

भारतीय संस्कृति के आदर्श पुरुष 'राम' के सीता परित्याग जनित कलंकित प्रतीत होने वाले चरित्र को इन्होंने 'मर्यादापुरुषोत्तम' रूप में स्थापित किया और भारतीय सामाजिक तथा सांस्कृतिक बोध के अनुरूप दाम्पत्य सम्बन्धों को व्याख्यायित करते हुए बताया कि दाम्पत्य सम्बन्ध का आधार भोग नहीं त्याग है।

उत्तररामचरितम् की गम्भीर एवं भावपूर्ण संरचना में व्यक्ति एवं व्यक्तित्त्व, राजा एवं प्रजा, प्रेम एवं न्याय, मूल्यों एवं दृष्टियों का टकराव गहराई से पिरोया हुआ है।

भावसंकुलता, व्यथा की गहराई एवं मानव-मनोविज्ञान की दृष्टियों से 'चित्रवीथि-प्रसङ्ग' तथा 'छायाङ्क' की योजना संस्कृत साहित्य में अप्रतिम है।

करुण रस के प्रभाव ने इनके नाटकों को और भी लोकप्रिय बना दिया। नाटकीय दृष्टि से राम एक 'धीरोदात्त' नायक हैं किन्तु भवभूति ने इन्हें भी बारम्बार रुलाया है ताकि पारस्परिक प्रेम के प्रति किंचित भी सन्देह शेष न रह जाये। यही कारण है कि व्यंजना के सामर्थ्य से परिचित होने के बावजूद इन्होंने अभिधा का प्रयोग करते हुए समस्त शंकाओं को निर्मूल किया तथा 'राम' के चरित्र को मर्यादा पुरुषोत्तम रूप में निष्कलंक स्थापित किया।

प्रकृति के साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए प्रकृति को साक्षात् पात्ररूपेण उपस्थापित करने वाला, जीवन के सुख-दुःखों एवं संघर्षों से गुजर कर आस्था एवं प्रेम को परिपुष्ट करने वाला तथा स्त्री के प्रति पुरुष के गहरे अपराधबोध की भावपूर्ण अभिव्यक्ति कराने वाला यह एक अद्भुत ग्रन्थरत्न है।

1.5.8 अन्य नाटक

1) **अनर्घराघव**— नाट्यशिल्प, रचनाशैली तथा कथानक के आधार पर नवीन प्रयोग करने वाले, रामकथाश्रित नाटककारों में 'मुरारि' एवं उनकी नाट्यकृति 'अनर्घराघव' अन्यतम है। सात अङ्कों में उपनिबद्ध इस नाटक में विश्वामित्र द्वारा यज्ञ की रक्षा हेतु राम-लक्ष्मण को ले जाने से लेकर राम के राज्याभिषेक तक की कथा कुछ मौलिक संकल्पनाओं के साथ वर्णित है। भवभूति के 'महावीरचरित' से प्रभावित इस नाटक में राम-परशुराम संवादादि प्रसंगों के माध्यम से राम को अपेक्षाकृत अधिक विनम्र एवं संयत प्रतिपादित किया गया है। ऐसे ही बालि को स्वयं उत्तेजित होकर युद्ध हेतु प्रस्तुत होते हुए दिखाकर इन्होंने राम-चरित्र पर लगे इस कलंक को भी धोने की कोशिश की है कि राम ने बालि को छिपकर मारा। विश्वामित्र जैसे ऋषियों के मुख से भी शृंगारमयी चर्चा (5/65) करवाकर जहाँ इन्होंने मर्यादा भङ्ग किया है, वहीं पाण्डित्य-प्रदर्शन एवं काव्यात्मकता (लगभग 500 पद्य) के लोभ में नाटकीयता को भी क्षति पहुँचाई है। फिर भी अपनी उर्वर काव्यात्मक कल्पनाएँ तथा मौलिक संकल्पनाओं के कारण नाट्यजगत् में ये समादृत रहे हैं।

2) **कर्पूरमंजरी**— 'कर्पूरमंजरी' आचार्य राजशेखर द्वारा प्राकृत भाषा में लिखा गया एक 'सट्टक या उपरूपक' है। अपने नाटक 'बालरामायण' में इन्होंने स्वयं को छः कृतियों का रचयिता कहा है जिनमें 'कर्पूरमंजरी' भी एक है। नृत्यप्रधान इस नाटिका में 'राजा चन्द्रपाल' एवं कुन्तल देश की राजकुमारी 'कर्पूरमंजरी' की प्रणयकथा वर्णित है। कालिदास के 'मालविकाग्निमित्र' तथा हर्ष की 'रत्नावली' से स्पष्टतया प्रभावित इस नाटिका को नृत्य-गीतादि के सुन्दर समायोजन ने रंगमंच के अनुरूप अत्यन्त आकर्षक बना दिया है। लोकनाट्यपरम्परा से प्रभावित होने के कारण रंगमंच पर शयन-दृश्य, स्नान-दृश्य एवं युद्ध जैसे दृश्यों को दिखाकर स्थापित नाट्यशास्त्रीय विधानों का उल्लंघन भी किया गया है किन्तु पर्दे के अर्थ में सम्भवतः 'जवनिका' का प्रथम प्रयोग 'सट्टक' रूपी नवीन रूपकविधा का श्रीगणेश करने वाला यह नाट्यसाहित्य में एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है।

3) **कुन्दमाला**— सन् 1923 ई. में रामकृष्ण कवि द्वारा हस्तलिखित प्रति के रूप में प्राप्त छः अंकों वाले 'कुन्दमाला' नाटक का सर्वप्रथम सम्पादन एवं प्रकाशन किया

गया जिसके रचयिता 'दिङ्नाग' हैं। उत्तररामचरित की भाँति राम के उत्तरवर्ती जीवन पर आधारित इस नाटक में सीता परित्याग से लेकर पुनर्मिलन तक की घटना वर्णित है। फलतः नाटकीय संवादरचना तथा नाट्यशिल्प पर अपनी अद्‌भुत पकड़ के कारण दिङ्नाग भवभूति से भी अधिक सफल नाटककार माने जाते हैं। करुण रस प्रधान इस नाटक में वस्तुविन्यास की कसावट कहीं भी शिथिल नहीं हो पाई है। रंगमंचीय प्रयोगों की दृष्टि से छोटे-छोटे संवाद एवं कल्पनाशील विन्यास इसे एक श्रेष्ठ व सफल नाटक बनाता है। तृतीय अङ्क में गंगा की धारा में प्राप्त होने वाली 'कुन्दमाला' ही सीता के पुनर्मिलन का आधार है। इसी आधार पर इसका नामकरण किया गया है।

4) **प्रबोधचन्द्रोदय**– प्रबोधचन्द्रोदय संस्कृत नाट्य जगत् की एक ऐसी प्रवर्तक कृति है जिसने 'दार्शनिक तत्त्वचिन्तन' को कथानक का आधार बनाकर मति, विवेक, श्रद्धा, भक्ति, करुणा, शान्ति, उपनिषद्, क्षमा आदि अमूर्त पात्रों की योजना के माध्यम से प्रतीक नाटकों की सरणी का सूत्रपात किया। यद्यपि अश्वघोष द्वारा इस प्रकार की पात्रयोजना वाले प्रतीकात्मक नाटकों के सूत्रपात का पूर्व संकेत प्राप्त होता है किन्तु वे अद्यावधि अनुपलब्ध हैं।

प्रबोधचन्द्रोदय के प्रणेता 'कृष्णमिश्र' हैं जो जेजाकभुक्ति के चंदेल राजा 'कीर्तिवर्मा' के शासनकाल में हुए। अतः इनका समय 11वीं सदी का उत्तरार्ध माना जा सकता है।

सत् एवं असत् प्रवृत्तियों के संघर्ष में सत् की विजय दर्शाकर 'वेदान्त-दर्शन' के तत्त्वों को इसमें नाटकीय एवं रोचक रूप में प्रस्तुत किया गया है। 'मन' नामक राजा की 'प्रवृत्ति' एवं 'निवृत्ति' नामक दो पत्नियाँ हैं। 'प्रवृत्ति' से 'मोह' तथा 'निवृत्ति' से 'विवेक' नामक पुत्र होता है। इन दोनों के संघर्ष में विवेक की जीत होती है। विवेक की उपनिषद् से विवाहोपरान्त 'प्रबोधचन्द्रोदय' नामक पुत्र की प्राप्ति होती है और नाटक सम्पन्न हो जाता है।

कृष्णमिश्र ने इसमें तत्कालीन समाज की कुरीतियों एवं पाखण्डों का यथार्थपरक चित्रण किया है। संवादों की सरसता एवं रोचकता प्रभावी है। इसके युगान्तकारी महत्त्व का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि इस दार्शनिक एवं प्रतीकात्मक नाट्यपरम्परा के आधार पर परवर्ती काल में अनेकानेक प्रतीक नाटक लिखे गए और आज भी लिखे जा रहे हैं जिनमें वेदान्तविलास, ज्ञानसूर्योदय, विवेकचन्द्रोदय आदि उल्लेखनीय हैं।

5) **प्रसन्नराघव**– प्रखर-पण्डित, ललित-कवि एवं निष्णात तर्कशास्त्री जयदेव रामकथाश्रित 'प्रसन्नराघव' के रचयिता हैं। सात अङ्कों में विभाजित इस नाटक में सीता-स्वयंवर से लेकर अन्त तक की रामकथा को रोचक परिवर्तनों के साथ चित्रित किया गया है। कथागायन की शैली का प्रयोग तथा काव्यात्मक वर्णनों की विपुलता के कारण यह नाटक **'लीलानाटकों'** से साम्य रखता है। माधुर्य युक्त काव्यकला के कारण इनकी 'पीयूषवर्ष' उपाधि सार्थक प्रतीत होती है। मंचन को उद्‌देश्य में रखकर लिखे गए इस नाटक की उक्ति-प्रत्युक्ति, संवादों का चुटीलापन तथा काव्यात्मकता इसे संस्कृत नाटकों में विशिष्ट स्थान दिलाता है।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित प्रश्नों के सही उत्तर के सामने (✓) का निशान लगाइये–

i) 'मालविकाग्निमित्रम्' में अङ्कों की संख्या है– 7/5

ii) 'अनर्घराघव' नाटक के रचयिता हैं– हर्ष/मुरारि

iii) प्रबोधचन्द्रोदय के रचनाकार हैं– दिङ्नाग/कृष्णमिश्र

iv) मृच्छकटिक प्रकरण के प्रणेता हैं– शूद्रक/कालिदास

v) मुद्राराक्षस नाटक में अंक हैं– 8/7

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

i) 'कुन्दमाला' नाटक के रचयिता .... हैं।

ii) दुर्वासा के शाप की योजना .... नाटक में है।

iii) उत्तररामचरितम् का अङ्गी रस .... है।

iv) मालविकाग्निमित्रम् में राजा.................... का वर्णन है।

v) अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का मूलस्रोत महाभारत का................है।

अभ्यास प्रश्न–2

1) 'उत्तररामचरितम्' का संक्षिप्त परिचय दें।

2) 'स्वप्नवासवदत्तम्' नाटक की कथावस्तु पर प्रकाश डालिए।

1.6 सारांश

प्रिय छात्रों! इस इकाई में आपने नाटकों की उत्पत्ति एवं विकास विषयक विभिन्न मान्यताओं को समझने के साथ-साथ कुछ महत्त्वपूर्ण नाटकों का परिचय प्राप्त किया। नाटकों की उत्पत्ति के विषय में समीक्षकों ने अलग-अलग मत प्रस्तुत करते हुए वीरपूजा, छायानाटक, उत्सव, यूनानी नाटक, पुत्तलिका नृत्य, दैवीय सिद्धान्त एवं वेदों तथा संवाद सूक्तों आदि को कारण माना। इनमें से भारतीय परम्परा प्रायः दैवीय उत्पत्ति एवं वैदिक संवाद सूक्तों को नाटकों की उत्पत्ति का कारण मानती है। जनसामान्य के रसात्मक मनोरंजन का उद्देश्य लेकर रचित नाट्य-साहित्य के विकास में लोकजीवन, परम्पराओं एवं वैदिक तथा लौकिक उत्सवों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके सम्पूर्ण विकास को स्वरूप तथा समृद्धि के आधार पर अंकुरण काल (प्रागैतिहासिक युग), उद्भव काल (वैदिक युग), विकास काल (इतिहास युग) एवं समृद्धि काल (बौद्धकाल से अद्यावधि) के रूप में मुख्यतः चार भागों में विभाजित कर हमने समझा। भारतीय संस्कृति एवं जीवनदर्शन के अनुरूप सुखान्तता, बहुभाषायी शिल्पविधान, विदूषक की परिकल्पना, अन्वितित्रय का अभाव, कोरस का अभाव, निषिद्ध क्रियाओं के वर्जन हेतु अर्थोपक्षेपकों का प्रयोग जैसे भारतीय नाटकों की अन्तर्निहित विशेषताओं को भी हमने जानने की कोशिश की। अन्त में स्वप्नवासवदत्तम्, मृच्छकटिकम्, मालविकाग्निमित्रम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मुद्राराक्षसम्, वेणीसंहारम्, उत्तररामचरितम्, अनर्घराघवम्, कर्पूरमंजरी, कुन्दमाला, प्रबोधचन्द्रोदयम् एवं प्रसन्नराघवम् जैसे चयनित नाट्य ग्रन्थों का परिचय एवं प्रमुख विशेषताओं को संक्षेप में जाना।

1.7 शब्दावली

उपनिबद्ध – रचा गया

रसपेशल – रस से युक्त

सौष्ठव – सुन्दरता

संकल्पना – सोच

अनुकृति – अनुकरण पर आधारित

अन्वितित्रय – काल, स्थान एवं कार्य का समन्वय

अद्यावधि – इस समय तक

1.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) संस्कृत साहित्य का इतिहास– डॉ. उमाशङ्कर शर्मा 'ऋषि', चौखम्भा साहित्य एकेडमी, वाराणसी।

2) संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास– डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

3) संस्कृत साहित्य का बृहद् इतिहास– बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी।

1.9 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न–1

1) (ग) ऋग्वैदिक संवाद सूक्त

2) (घ) कोरस की अनिवार्यता

3) (क) रिजवे

4) (क) भरतमुनि (ख) ब्रह्मा (ग) नट् (घ) मंगलाचरण

बोध प्रश्न–2

1) (i) 5 (ii) मुरारि (iii) कृष्णमिश्र (iv) शूद्रक (v) 8 अंक

2) i) दिङ्नाग

ii) अभिज्ञानशाकुन्तलम्

iii) करुण

iv) उदयन

v) शकुन्तलोपाख्यान

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 2 रूपक भेद

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- रूपक के भेदों से परिचित होंगे।
- नाटक, प्रकरण, भाण आदि के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- रूपक भेदों के ज्ञान के माध्यम से नाटक, प्रकरण, भाण आदि के मध्य भेद कर सकेंगे।
- संस्कृत की पारिभाषिक शब्दावली तथा विशिष्ट प्रयोग विधि का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियों! BSKC-133 'संस्कृत नाटक' पाठ्यक्रम की यह द्वितीय इकाई है। प्रथम इकाई में आपने नाटक की उत्पत्ति और विकास के विषय में अध्ययन किया। इस इकाई में आप रूपक भेदों के विषय में जानेंगे। आप जानते हैं कि रूपक दस हैं – नाटक, प्रकरण, भाण, प्रहसन, डिम, व्यायोग, समवकार, वीथी, अंक, ईहामृग। आचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में इन रूपक भेदों का विस्तृत वर्णन किया है। आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में, धनंजय ने दशरूपक में, आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में रूपक के भेदों के विषय में अपने-अपने मत प्रस्तुत किए हैं। आचार्यों ने इन रूपक

भेदों के माध्यम से जिज्ञासुओं को यह समझाने का प्रयास किया है कि हम लक्षण के आधार पर किस कृति को नाटक कहेंगे? किसको प्रकरण कहेंगे? किसको भाण कहेंगे? इत्यादि। इस इकाई के माध्यम से आप रूपक भेदों के लक्षण को जानकर उनकी विविधताओं के आधार पर नाट्य रचना के भेदों को समझने की योग्यता का विकास करेंगे।

2.2 रूपक भेद

आचार्य भरतमुनि ने 36 अध्यायों में विभक्त अपने आकर ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में नाट्यशास्त्र के सम्बन्ध में प्रामाणिक और विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। नाट्य के माहात्म्य पर प्रकाश डालते हुए भरतमुनि का कथन है कि विश्व का कोई ऐसा ज्ञान, शिल्प, विद्या, कला, योग (प्रयोग) और कर्म नहीं है जो इसमें दिखाई न देता हो–

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।
नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते।।

(ना.शा. 1/118)

महामुनि भरत, दशरूपककार धनंजय तथा साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने रूपकों के नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अंक, वीथी, प्रहसन प्रभृति दस भेद माने हैं–

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकार डिमाः।
इहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश।।

(साहित्यदर्पण 6/3)

इनके अतिरिक्त आचार्य भोज तथा नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने रूपक के बारह भेद स्वीकार किये हैं जिनमें 'नाटिका' और 'प्रकरणा' नामक दो भेद और परिगणित हैं। इन रूपकों के अतिरिक्त अट्ठारह उपरूपकों को भी स्वीकार किया गया है–

नाटिका त्रोटकं गोष्ठी सट्टकं नाट्यरासकम्।
प्रस्थानोल्लाप्यकाव्यानि प्रेङ्खणं रासकं तथा।।
संलापकं श्रीगदितं शिल्पकं च विलासिका।
दुर्मल्लिका प्रकरणी हल्लीशो भाणिकेति च।।
अष्टादश प्राहुरुपरूपकाणि मनीषिणः।
विना विशेषं सर्वेषां लक्ष्म नाटकवन्मतम्।।

(साहित्यदर्पण 6/4-6)

इन सभी रूपकों तथा उपरूपकों का परस्पर भेद वस्तु (कथावस्तु), नेता (नायक) तथा रस के आधार पर किया जाता है। ये तीनों रूपक के भेदक तत्त्व हैं जिसके लिए दशरूपककार ने लिखा है– **वस्तुनेतारसस्तेषां भेदकः**। वस्तु = इतिवृत्त अर्थात् कथा, कहानी। किसी एक रूपक-प्रकार की कथावस्तु, उसका नायक, नायक की प्रकृति तथा उसका प्रतिपाद्य-रस उसे अन्य रूपक-प्रकारों से भिन्न करता है।

2.2.1 नाटक

दस प्रकार के नाट्यों या रूपकों में नाटक सबसे महत्त्वपूर्ण तथा प्रथम रूपक है, जो रूपक के सभी लक्षणों से युक्त होता है। दशरूपककार धनंजय ने नाटक को अन्य सभी रूपकों की प्रकृति अर्थात् मूलकारण के रूप में स्वीकार किया है क्योंकि अधिकांश आचार्यों ने नाटक के सभी धर्म बतलाये हैं और प्रकरण आदि के सभी धर्मों को शब्दों के द्वारा न कहकर, अपितु **'शेषं नाटकवत्'** कहकर छोड़ दिया है।

यह उक्ति रूपकों में नाटक की महत्ता को स्पष्ट कर देती है। इसी कारण नाटक रूपक की एक विधा होकर भी उसके पर्याय के रूप में प्रचलित हो गया। यद्यपि अन्य रूपकों में भी रंजना का समावेश रहा करता है किन्तु नाटक की रंजना इतनी विचित्र होती है कि सामाजिकों का हृदय नाच उठता है। साहित्यदर्पणकार ने नाटक का लक्षण इस प्रकार किया है–

नाटकं ख्यातवृत्तं स्यात् पञ्चसन्धिसमन्वितम्।
विलासर्द्ध्यादिगुणवद्युक्तं नानाविभूतिभिः।।

सुखदुःखसमुद्भूति नानारसनिरन्तरम्।
पञ्चादिका दशपरास्तत्राङ्काः परिकीर्तिताः।।

प्रख्यातवंशो राजर्षिर्धीरोदात्तः प्रतापवान्।
दिव्योऽथ दिव्यादिव्यो वा गुणवान्नायको मतः।।

एक एव भवेदङ्गी शृङ्गारो वीर एव वा।
अङ्गमन्ये रसाः सर्वे कार्यो निर्वहणेऽद्भुतः।।

चत्वारः पञ्च वा मुख्याः कार्यव्यापृतपूरुषाः।
गोपुच्छाग्रसमाग्रं तु बन्धनं तस्य कीर्तितम्।।

(साहित्यदर्पण 06 / 7-11)

नाटक का इतिवृत्त इतिहास प्रसिद्ध होता है जिसमें मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण पाँचों सन्धियों का समावेश होता है। नाटक मानव जीवन के सुख-दुःखात्मक भावों से उद्भूत विभिन्न रसों एवं भावों से युक्त होता है। इसकी रचना कम से कम पाँच तथा अधिक से अधिक दस अंकों में होती है। इसका नायक किसी प्रख्यात वंश में उत्पन्न राजर्षि होता है, जो धीरोदात्त तथा प्रतापी होता है। यह नायक दिव्य अर्थात् देवलोक का निवासी, अदिव्य अर्थात् मर्त्यलोक का निवासी तथा दिव्यादिव्य अर्थात् कोई दिव्य पुरुष जो मानव रूप में विराजमान हो, में से कोई भी महनीय व्यक्तित्व हो सकता है। नायक के समान उदात्त चरित वाले अन्य सहायक भी हुआ करते हैं। शृंगार या वीर में से कोई एक रस मुख्य रूप से अभिव्यञ्जित हुआ करता है तथा अन्य रस और भावादि मुख्य रस के उपकारक हुआ करते हैं। नाटक के अन्त में चार-पाँच पात्रों के चरित-वर्णन के साथ अद्भुत रस की योजना हुआ करती है। आचार्यों का मत है कि नाटक की रचना यदि गोपुच्छाग्र के समान होती है तो अच्छी लगती है। **'अभिज्ञानशाकुन्तलम्'** एवं **'उत्तररामचरितम्'** नाटक के उदाहरण के रूप में देखे जा सकते हैं।

2.2.2 प्रकरण

भवेत्प्रकरणे वृत्तं लौकिकं कविकल्पितम्।।
शृङ्गारोऽङ्गी नायकस्तु विप्रोऽमात्योऽथवा वणिक्।
सापायधर्मकामार्थपरो धीरप्रशान्तकः।।

नायिका कुलजा क्वापि वेश्या क्वापि द्वयं क्वचित्।
तेन भेदास्त्रयस्तस्य तत्र भेदस्तृतीयकः।।
कितवद्यूतकारादिविटचेटकसंकुलः। (साहित्यदर्पण 6/224-227)

इस प्रकार प्रकरण का इतिवृत्त लोक स्तर का होता है जिसे कवि प्रतिभा से कल्पित करता है। इसका अंगीरस श्रृंगार होता है। ब्राह्मण, अमात्य (सेनापति) अथवा व्यापारी में से कोई एक नायक होता है, जैसे मृच्छकटिक प्रकरण का नायक (चारुदत्त) ब्राह्मण है, मालतीमाधव प्रकरण का नायक (माधव) राजसचिव है तथा पुष्पभूषित प्रकरण का नायक वणिक् है। यह नायक धीरप्रशान्त कोटि का होता है। यह विपरीत परिस्थितियों में भी विभिन्न आपत्तियों का सामना करता हुए धर्म, अर्थ तथा काम की सिद्धि में तत्पर रहता है। प्रकरण में कुलस्त्री तथा गणिका (वेश्या) दो प्रकार की नायिकायें होती हैं। कोई प्रकरण ऐसा होता है जिसमें कुलस्त्री नायिका के रूप में चित्रित की गयी है जैसे पुष्पदूषित नामक प्रकरण में। कोई प्रकरण ऐसा है जिसमें वेश्या को नायिका बनाया गया है जैसे तरंगदत्त प्रकरण में। कोई प्रकरण ऐसा होता है जिसमें दोनों प्रकार की नायिकायें होती हैं जैसे मृच्छकटिक प्रकरण में। इन त्रिविध प्रकरण भेदों में तीसरा अर्थात् 'कुलजा-वेश्या-नायिका' द्वयात्मक जो प्रकरण है उसमें धूर्त, द्यूतकार, विट और चेट आदि का भी पर्याप्त चित्रण रहता है। प्रकरण की अन्य विशेषतायें नाटक के ही समान होती हैं।

2.2.3 भाण

भाण एक एकांकी रूपक है– जिसमें अकेला पात्र विट ही आकाशभाषित के माध्यम से उक्ति-प्रत्युक्ति करता हुआ धूर्तजनों के चरित का वर्णन करता है।

साहित्यदर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने भाण का लक्षण इस प्रकार किया है–

भाणः स्याद्धूर्तचरितो नानावस्थान्तरात्मकः।।
एकाङ्क एक एवात्र निपुणः पण्डितो विटः।
रङ्गे प्रकाशयेत्स्वेनानुभूतमितरेण वा।।
संबोधनोक्तिप्रत्युक्ती कुर्यादाकाशभाषितैः।
सूचयेद्वीरशृङ्गारौ शौर्यसौभाग्यवर्णनैः।।
तत्रेतिवृत्तमुत्पाद्यं वृत्तिः प्रायेण भारती।
मुखनिर्वहणे सन्धी लास्याङ्गानि दशापि च।।

(साहित्यदर्पण 06/227-230)

भाण रूपक का वह प्रकार है जिसमें धूर्तचरित का वर्णन रहा करता है। विभिन्न प्रकार के लोकोपयोगी व्यवहारों का संयोजन एक अङ्क में होता है और एक ही बुद्धिमान पात्र 'विट' नायक हुआ करता है जो अपने तथा दूसरे के अनुभवों को सामाजिकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। इस प्रकार विट आकाशभाषित का आश्रय लेकर किसी न किसी को सम्बोधित करते हुए उक्ति प्रत्युक्ति के माध्यम से विषय-वस्तु का परिचय

तथा अपना अभिप्राय सामाजिकों तक पहुँचता है। शौर्य-वर्णन के द्वारा वीर तथा विलास या सौभाग्य वर्णन के द्वारा श्रृङ्गार रस की सूचना दी जाती है। भाण का इतिवृत्त कविकल्पित हुआ करता है और भारती वृत्ति का बाहुल्य होता है।

भारती वृत्ति शब्द वृत्ति है और इसमें वाचिक अभिनय की प्रधानता होती है इसलिए भाण में भी भारती वृत्ति की प्रमुखता होती है। भारती वृत्ति की प्रधानता के कारण इसे भाण कहा जाता है। इसमें लास्य के गेयपद आदि दसों अङ्गों तथा मुख और निर्वहण सन्धियों की योजना अङ्गों सहित होती है। **'लीलामधुकर'** को आचार्यों ने भाण के रूप में उद्धृत किया है।

2.2.4 व्यायोग

ख्यातेतिवृत्तो व्यायोगः स्वल्पस्त्रीजनसंयुतः।
हीनो गर्भविमर्शाभ्यां नरैर्बहुभिराश्रितः।।
एकाङ्कश्च भवेदस्त्रीनिमित्तममरोदयः।
कैशिकीवृत्तिरहितः प्रख्यातस्तत्र नायकः।।
राजर्षिरथ दिव्यो वा भवेद्धीरोद्धतश्च सः।
हास्यश्रृङ्गारशान्तेभ्यः इतरेऽत्राङ्गिनो रसाः।।

(साहित्य 6/231-233)

व्यायोग का इतिवृत्त प्रख्यात होता है। इसमें स्त्रीपात्रों की संख्या बहुत कम तथा पुरुष पात्रों की संख्या अधिक होती है। इसमें गर्भ और विमर्श सन्धिओं की योजना नहीं रहती है। इसमें एक ही अंक होता है। इसमें ऐसे युद्ध अथवा संग्राम का वर्णन होता है जो स्त्री के कारण न हो। इसमें कैशिकी वृत्ति का अभाव रहता है। इसका नायक कोई प्रसिद्ध पुरुष हुआ करता है जिसके लिए राजर्षि अथवा देवविशेष होना आवश्यक हो। इसमें धीरोदात्त प्रकृति के ही नायक का चित्रण अपेक्षित है। इसमें शृंगार, हास्य तथा शान्त रस को छोड़कर अन्य रसों में से किसी को भी प्रधान रूप में रखा जा सकता है। व्यायोग के उदाहरण के रूप में 'सौगन्धिकाहरण' को लिया जा सकता है।

2.2.5 समवकार

रूपक का वह भेद जिसमें अनेक प्रयोजन भली-भाँति निबद्ध किए जाते हैं, वह समवकार कहलाता है। आचार्य विश्वनाथ ने समवकार का लक्षण इस प्रकार किया है–

वृत्तं समवकारे तु ख्यातं देवासुराश्रयम्।
सन्धयो निर्विमर्शास्तु त्रयोऽङ्कास्तत्र चादिमे।।
सन्धी द्वावन्त्ययोस्तद्वदेक एको भवेत्पुनः।
नायका द्वादशोदात्ताः प्रख्याता देवमानवाः।।

फलं पृथक्पृथक्तेषां वीरमुख्योऽखिलो रसः।
वृत्तयो मन्दकैशिक्यो नात्र बिन्दुप्रवेशकौ।।

वीथ्यङ्गानि च तत्र स्युर्यथालाभं त्रयोदश।
गायत्र्युष्णिङ्मुखान्यत्र च्छन्दांसि विविधानि च।।
त्रिश्रृङ्गारस्त्रिकपटः कार्यश्चायं त्रिविद्रवः।
वस्तु द्वादशनालीभिर्निष्पाद्यं प्रथमाङ्कगम्।।

द्वितीयेऽङ्के चतसृभिर्द्वाभ्यामङ्के तृतीयके।
धर्मार्थकामैस्त्रिविधः शृङ्गारः कपटः पुनः।।
स्वाभाविकः कृत्रिमश्च दैवजो विद्रवः पुनः।
अचेतनैश्चेतनैश्च चेतनाचेतनैः कृतः।।

(साहित्यदर्पण 6/234-240)

समवकार में देव अथवा असुरों से सम्बद्ध प्रसिद्ध इतिवृत्त हुआ करता है। विमर्श सन्धि को छोड़कर अन्य चारों सन्धियों की योजना तीन अङ्कों में हुआ करती है। प्रथम अङ्क में मुख तथा प्रतिमुख, द्वितीय अङ्क में गर्भ तथा तृतीय अङ्क में निर्वहण सन्धि की योजना होती है। इसमें बारह नायक होते हैं जो धीरोदात्त, प्रख्यात तथा दिव्य अथवा अदिव्य कोटि के हुआ करते हैं। प्रत्येक नायक का प्रयोजन पृथक्-पृथक् होता है।

अङ्गी रस के रूप में वीर तथा अङ्गरूप में अन्य रसों का उपनिबन्धन हुआ करता है। इसमें चारों ही वृत्तियों का विन्यास होता है किन्तु कैशिकी की अल्पता होती है। बिन्दु नामक अर्थप्रकृति तथा प्रवेशक नामक अर्थोपक्षेपक की योजना आवश्यक नहीं होती। उपयोगिता की दृष्टि से वीथी के तेरह अङ्गों की भी योजना होती है। गायत्री तथा उष्णिक् छन्दों का प्राधान्य होता है। इसमें धर्मकृत, अर्थकृत तथा कामकृत तीन प्रकार के शृङ्गार की योजना होती है। स्वाभाविक, कृत्रिम तथा दैवज तीन प्रकार के कपट और चेतन, अचेतन तथा चेतनाचेतन तीन प्रकार के विद्रवों की भी योजना होती है। प्रथम अङ्क में कामशृङ्गार (प्रहसनात्मक) की योजना होती है। इसमें अङ्कों का विभाजन काल के अनुसार होता है। प्रथम अङ्क की कथा बाहर नाड़ी (24 घड़ी), द्वितीय अङ्क की चार नाड़ी (8 घड़ी) तथा तृतीय अङ्क की कथा दो नाड़ी (4 घड़ी) की होती है। समवकार के उदाहरण के रूप में **'समुद्रमन्थन'** या **'अमृतमन्थन'** को लिया गया है।

बोध प्रश्न 1

1) **निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्प पर सही (✓) का निशान लगाइए –**

i) नाट्यशास्त्र में अध्याय हैं –	36/34
ii) नाटक का इतिवृत्त होता है –	कविकल्पित/प्रसिद्ध
iii) प्रकरण का अंगी रस है –	वीर/श्रृंगार
iv) भाण में अंक होते हैं–	1/5
v) लीलामधुकर है –	नाटक/भाण
vi) स्त्रीपात्रों की संख्या कम होती है –	व्यायोग/समवकार

2) नाटक में कौन-कौन सी सन्धियाँ होती हैं?

....

....

3) प्रकरण का नायक किस कोटि का होता है?

....

....

4) भाण का इतिवृत्त कैसा होता है?

....

....

5) सौगन्धिकाहरण किस कोटि का रूपक है?

....

....

6) समवकार में नायकों की संख्या कितनी होती है?

....

....

7) समुद्रमन्थन किस कोटि का रुपक है?

....

....

अभ्यास प्रश्न 1

1) नाटक क्या है? स्पष्ट कीजिए।

2) साहित्यदर्पणकार के अनुसार भाण पर प्रकाश डालिए।

2.2.6 डिम

मायेन्द्रजालसंग्रामक्रोधोद्भ्रान्तादिचेष्टितैः।
उपरागैश्च भूयिष्ठो डिमः ख्यातेतिवृत्तकः।।

अङ्गी रौद्ररसस्तत्र सर्वेऽङ्गानि रसाः पुनः।
चत्वारोऽङ्का मता नेह विष्कम्भकप्रवेशकौ।।

नायका देवगन्धर्वयक्षरक्षोमहोरगाः।
भूतप्रेतपिशाचाद्याः षोडशात्यन्तमुद्धताः।।

वृत्तयः कैशिकीहीना निर्विमर्शाश्च सन्धयः।
दीप्ताः स्युः षड्रसाः शान्तहास्यशृङ्गारवर्जिताः।।

(साहित्यदर्पण241-244)

माया, इन्द्रजाल, संग्राम आदि के कारण क्रोध से व्यग्र हृदय व्यक्तियों की चेष्टाओं का बाहुल्य होने के कारण इसमें निर्घात, उल्कापात, सूर्यचन्द्रोपराग आदि का वर्णन होता है। इसका इतिवृत्त प्रख्यात होता है। इसमें रौद्र अंगी रस होता है तथा अन्य अंग रूप में उपनिबद्ध किये जा सकते हैं। इसकी रचना चार अङ्कों में होती है तथा विष्कम्भक और प्रवेशक का होना अनिवार्य नहीं होता। इसमें सोलह नायक होते हैं जो देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, भूत, प्रेत, पिशाच आदि अत्यन्त उद्धत प्रकृति के पात्र होते हैं। इसमें कैशिकी वृत्ति को छोड़कर अन्य तीनों वृत्तियों का समावेश होता है। इसमें विमर्श सन्धि के अतिरिक्त अन्य चारों सन्धियाँ (मुख, प्रतिमुख, गर्भ, निवर्हण अंगों) सहित होती हैं। इसमें शान्त, हास्य और शृंगार को छोड़कर अन्य छः रसों की दीप्ति आवश्यक होती है। डिम के उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में अधिकांश आचार्यों द्वारा महाकवि वत्सराजकृत **'त्रिपुरदाह'** का ही उल्लेख किया गया है। महाकवि वत्सराज संस्कृत साहित्य के ऐसे कवि हैं जिन्होंने छः भिन्न प्रकार के रूपकों की रचना की जो षड्रूपकों के नाम से प्रसिद्ध हैं।

2.2.7 ईहामृग

ईहामृग रूपक का वह भेद है जिसमें नायक मृग के समान अलभ्य नायिका को प्राप्त करने की इच्छा (ईहा) करता है, इसी कारण इसे ईहामृग कहा गया है। ईहामृग की व्युत्पत्ति इस प्रकार की गई है–

'ईहा चेष्टा मृगस्येव स्त्रीमात्रार्था यत्र स ईहामृगः।'

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में ईहामृग का लक्षण इस प्रकार किया है–

ईहामृगो मिश्रवृत्तश्चतुरङ्कः प्रकीर्तितः।
मुखप्रतिमुखे सन्धी तत्र निर्वहणं तथा।।

नरदिव्यावनियमौ नायकप्रतिनायकौ।
ख्यातौ धीरोद्धतावन्यो गूढभावादयुक्तकृत्।।

दिव्यस्त्रियमनिच्छन्तीमपहारादिनेच्छतः।
शृङ्गाराभासमप्यस्य किञ्चित्किञ्चित्प्रदर्शयेत्।।

पताकानायका दिव्या मर्त्या वापि दशोद्धताः।
युद्धमानीय संरम्भं परं व्याजान्निवर्तते।।

महात्मानो वधप्राप्ता अपि वध्याः स्युरत्र नो।
एकाङ्को देव एवात्र नेतेत्याहुः परे पुनः।।

दिव्यस्त्रीहेतुकं युद्धं नायकाः षडितीतरे।

(साहित्यदर्पण 6/245-249)

ईहामृग का इतिवृत्त प्रख्यात तथा कल्पित वृत्त का सम्मिश्रण हुआ करता है जिसकी रचना चार अङ्कों में होती है। कुछ आचार्यों ने ईहामृग की रचना के लिए एक ही अङ्क पर्याप्त माना है। इसमें मुख, प्रतिमुख तथा निर्वहण तीन ही सन्धियाँ होती हैं। देव तथा मानव दोनों में से कोई भी नायक अथवा प्रतिनायक के रूप में चित्रित हो सकता है किन्तु वह प्रख्यात तथा उद्धत प्रकृति का होता है।

प्रतिनायक अनुचित आचरण करने वाला होता है और न चाहती हुई दिव्य स्त्री को अपहरण आदि के द्वारा प्राप्त करना चाहता है जिससे शृङ्गाराभास की भी अभिव्यंजना हुआ करती है। इसमें उद्धत प्रकृति के दस पताकानायक होते हैं जो दिव्य तथा मानव दोनों में से कोई भी होते हैं। प्रतिनायक का बल युद्धस्थान में प्रदर्शित कर किसी न किसी बहाने (पलायन आदि) से युद्ध को रोक दिया जाता है और वधयोग्य जनों का भी वध वर्णित नहीं किया जाता है। कुछ आचार्यों का मत है कि इसमें छः नायक आवश्यक हैं जो किसी दिव्याङ्गना के कारण परस्पर लड़ते-झगड़ते हुए चित्रित किए जाते हैं।

2.2.8 अङ्क

रूपक का वह भेद है जिसकी कथावस्तु एक अङ्क में ही निबद्ध होती है और इसी कारण यह अङ्क कहलाता है। कुछ नाट्याचार्य अङ्क के स्थान पर उत्सृष्टिकाङ्क नाम अधिक उचित समझते हैं क्योंकि नाटकादि रूपकों का अन्तर्विभाग लगभग सभी आचार्यों ने अङ्क के रूप में स्वीकार किया है।

आचार्य विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में उत्सृष्टिकाङ्क का लक्षण इस प्रकार किया है–

उत्सृष्टिकाङ्क एकाङ्को नेतारः प्राकृता नराः।।
रसोऽत्र करुणः स्थायी बहुस्त्रीपरिदेवितम्।
प्रख्यातमितिवृत्तं च कविर्बुद्ध्या प्रपञ्चयेत्।।
भाणवत्सन्धिवृत्यङ्गान्यस्मिञ्जयपराजयौ।
युद्धं च वाचा कर्त्तव्यं निर्वेदवचनं बहु।।

(साहित्यदर्पण 6/250-252)

उत्सृष्टिकाङ्क की रचना एक अङ्क में होती है जिसमें किसी प्रख्यातवृत्त को कवि अपनी बुद्धि द्वारा विस्तृत कर प्रस्तुत करता है। इसमें दिव्य पुरुषों का अभाव होता है और सामान्य पुरुष ही नायक के रूप में चित्रित किए जाते हैं। नारियों के विलाप का वर्णन प्रचुर मात्रा में होने के कारण करुण रस अङ्गी रूप में होता है। मुख तथा निर्वहण दोनों सन्धियों की योजना अङ्गों सहित होती है और केवल भारती वृत्ति का ही विन्यास हुआ करता है। भारती वृत्ति के कारण इसमें जय-पराजय, युद्ध-नियुद्ध आदि वाणी द्वारा ही प्रकाशित किए जाते हैं। यह स्त्रियों के विलाप से युक्त होता है जिससे व्याकुलमय चेष्टाएँ तथा निर्वेदप्राय भाषण की अधिकता होती है। इसके उदाहरण के रूप में **'कुसुमशेखरविजय'** को लिया गया है।

2.2.9 वीथी

वीथी वह रूपक भेद है जो भारती वृत्ति का एकदेश (अङ्ग) तथा अन्य रूपकों के लिए उपकारक माना गया है। इसे वीथी इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह वीथी अर्थात् गली के समान वक्रतापूर्ण होती हैं। यह वक्रोक्तिवैचित्र्य वीथी के तेरह अङ्गों के रूप में माना जाता है।

वीथी का लक्षण साहित्यदर्पण में इस प्रकार किया गया है–

वीथ्यामेको भवेदङ्कः कश्चिदेकोऽत्र कल्प्यते।
आकाशभाषितैरुक्तैश्चित्रां प्रत्युक्तिमाश्रितः।।

सूचयेद्भूरि शृङ्गारं किञ्चिदन्यान्रसान् प्रति।
मुखनिर्वहणे सन्धी अर्थप्रकृतयोऽखिलाः।।
अस्यास्त्रयोदशाङ्गानि निर्दिशन्ति मनीषिणः।
उद्घात्य(त)कावलगिते प्रपञ्चस्त्रिगतं छलम्।।
वाक्केल्यधिबले गण्डमवस्यन्दितनालिके।
असत्प्रलापव्याहारमृद(मार्द)वानि च तानि तु।।

(साहित्यदर्पण 6/253-256)

वीथी की रचना एक अङ्क में होती है जिसमें एक पात्र आकाशभाषित के माध्यम से या फिर दो पात्र उत्तर-प्रत्युत्तर के द्वारा अन्य काल्पनिक पात्रों से बातचीत करते हुए चित्रित किए जाते हैं। इसमें शृङ्गार रस की अभिव्यक्ति (सूचना) अधिक तथा अन्य रसों की कुछ कम होती है। इसमें मुख तथा निर्वहण दो ही सन्धियाँ अङ्गों सहित रहा करती हैं तथापि अर्थप्रकृतियाँ पाँचों ही रहती हैं। शृङ्गार रस की अधिकता के कारण इसमें कैशिकी वृत्ति का बाहुल्य होता है। वीथी के उद्घात्यक, अवलगित, प्रपञ्च, त्रिगत, छल, वाक्केलि, अधिबल, गण्ड, अवस्यन्दित, अङ्ग माने गऐ हैं। **'वकुलवीथी'** और **'इन्दुलेखा'** वीथी-रूपक के उदाहरण हैं।

2.2.10 प्रहसन

प्रहसन रूपक का वह भेद है जिसमें हास्य रस की प्रधानता के साथ धूर्त, पाखण्डी आदि के चरित्रों का चित्रण हुआ करता है जिससे सामाजिकों को आनन्द तो प्राप्त होता ही है साथ ही वे इन लोगों के फेर में पड़ने से बच जाते हैं–

साहित्यदर्पण में प्रहसन का लक्षण इस प्रकार किया है–

भाणवत्सन्धिसन्ध्यङ्गलास्याङ्गाङ्कैर्विनिर्मितम्।
भवेत्प्रहसनं वृत्तं निन्द्यानां कविकल्पितम्।।
अत्र नारभटी, नापि विष्कम्भकप्रवेशकौ।
अङ्गी हास्यरसस्तत्र वीथ्यङ्गानां स्थितिर्न वा।

शुद्ध प्रहसन–

तपस्विभगवद्विप्रप्रभृतिष्वत्र नायकः।
एको यत्र भवेद्धृष्टो हास्यं तच्छुद्धमुच्यते।।

सङ्कीर्ण प्रहसन–

आश्रित्य कञ्चन जनं संकीर्णमिति तद्विदुः।
वृत्तं बहूनां धृष्टानां सङ्कीर्णं केचिदूचिरे
तत्पुनर्भवति द्वयङ्कमथवैकाङ्कनिर्मितम्।।

विकृत प्रहसन–

विकृतं तु विदुर्यत्र षण्ढकञ्चुकितापसाः।
भुजङ्गचारणभटप्रभृतेर्वेषवाग्युताः।।

(साहित्यदर्पण 6/264-268)

प्रहसन का इतिवृत्त कविकल्पित होता है जिसकी रचना एक अङ्क में होती है और नायक कोई अधम प्रकृति का व्यक्ति होता है। इसमें भाण के समान मुख तथा निर्वहण दो सन्धियाँ अङ्गों सहित होती हैं और लास्य के दसों अङ्गों की योजना होती है। इसमें आरभटी वृत्ति तथा विष्कम्भक और प्रवेशक की योजना नहीं होती है। इसमें हास्य रस अङ्गी रस के रूप में अभिव्यंजित हुआ करता है और हास्य के स्मित, हसित, विहसित, उपहसित, अपहसित तथा अतिहसित प्रभृति छः प्रकारों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। कुछ आचार्यों ने प्रहसन के शुद्ध, विकृत तथा सङ्कीर्ण तीन भेद मानते हैं और कुछ आचार्यों ने विकृत को सङ्कीर्ण में ही अन्तर्भूत मानकर शुद्ध तथा सङ्कीर्ण दो ही भेद स्वीकार किए हैं। जिस प्रहसन में तपस्वी, संन्यासी तथा ब्राह्मण आदि के हास-परिहास पूर्ण संवाद, आभूषण तथा अविकृत भाषा और व्यवहार के द्वारा विशेष भावों और वस्तु की अभिव्यञ्जना हो वह शुद्ध प्रहसन कहलाता है। शुद्ध प्रहसन का उदाहरण **'कन्दर्पकेलि'** है। विकृत प्रहसन कामुक, चारण, योद्धा आदि की वेशभूषा का अनुकरण करने वाले नपुंसक, कञ्चुकी और तपस्वी आदि पात्रों से युक्त होता है। **'कलिकेलि'** विकृत प्रहसन का उदाहरण है। जिस प्रहसन में वेश्या, विट, चेट, नपुंसक, विदूषक आदि का चित्रण होता है और असभ्य वेशभूषा, वस्त्र, चेष्टा आदि का अनुकरण किया जाता है वह सङ्कीर्ण अथवा मिश्र प्रहसन कहलाता है। **'लटकमेलक'**, **'धूर्तचरितम्'** तथा **'सैरन्ध्रिका'** आदि सङ्कीर्ण प्रहसन के उदाहरण हैं।

बोध प्रश्न 2

1) **निम्नलिखित में सत्य (✓) तथा असत्य (×) का चयन कीजिए –**

   i) डिम का इतिवृत्त प्रख्यात होता है – ( )

   ii) डिम में 12 नायक होते हैं – ( )

   iii) ईहामृग में 5 अंक होते हैं – ( )

   iv) अंक में सामान्य पुरुष नायक होता है – ( )

   v) वीथी में कैशिकी वृत्ति का बाहुल्य होता है – ( )

   vi) प्रहसन का अंगीरस करुण है – ( )

1) **रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –**

   i) डिम का अंगी रस .... होता है।

   ii) ईहामृग का नायक .... तथा .... होता है।

   iii) अंक का अंगी रस .... होता है।

   iv) प्रहसन का इतिवृत्त .... होता है।

   v) शुद्ध प्रहसन का उदाहरण .... है।

अभ्यास प्रश्न 2

निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए –

i) डिम

ii) ईहामृग

iii) प्रहसन

2.3 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों! इस इकाई में आपने रूपक भेदों का अध्ययन किया। आपको यह ज्ञात है कि रूपकों की संख्या 10 है। उन दशरूपकों में नाटक प्रमुख है। नाटक में कम से कम पाँच और अधिकतम दस अंक होते हैं। इसका इतिवृत्त प्रख्यात और नायक धीरोदात्त प्रकृति का होता है। प्रकरण में दस अंक होता है। इसका इतिवृत्त कविकल्पित तथा नायक धीरप्रशान्त होता है। भाण एकांकी रूपक है। इसमें धूर्तजनों का चरित्र वर्णित होता है। प्रहसन में एक अंक होता है तथा इसका कथानक कविकल्पित होता है। ऐसा रूपक जिसमें उत्पात वर्णन का बाहुल्य हो डिम कहलाता है। इसका इतिवृत्त कविकल्पित होता है। व्यायोग का इतिवृत्त तथा नायक दोनों प्रख्यात होते हैं। इसमें स्त्री पात्रों की संख्या कम एवं पुरुष पात्रों की संख्या अधिक होती है तथा एक दिन की घटना का वर्णन होता है। समवकार में देव तथा असुरों से सम्बद्ध प्रसिद्ध इतिवृत्त होता है। इसमें तीन अंक होते हैं तथा वीर अंगी रस होता है। वीथी में एक अंक होता है जिसमें एक या दो पात्र आकाशभाषित के माध्यम से उत्तर प्रत्युत्तर के द्वारा काल्पनिक वार्तालाप करते हैं। इसमें श्रृंगार रस की अधिकता होती है। अंक नामक रूपक भेद भी एक अंक का होता है। इसमें कवि किसी प्रख्यात वृत्त को अपनी बुद्धि द्वारा विस्तृत रूप में प्रस्तुत करता है। ईहामृग का इतिवृत्त प्रख्यात तथा कल्पित का मिश्रित रूप होता है। इसमें चार अंक होते हैं। उसका नायक उद्धत प्रकृति का देव अथवा मनुष्य होता है। इस प्रकार इस इकाई के माध्यम से आपने रूपक के दशविध भेदों का लक्षण सहित अध्ययन किया।

2.4 शब्दावली

आकर – श्रेष्ठ

प्रतिपाद्य – प्रयोजन

पर्याय – समानार्थक

प्रख्यात – प्रसिद्ध

उक्ति – कथन

इतिवृत्त – कथावस्तु

उत्कृष्ट – उन्नत

आपत्ति – संकट

गणिका – वेश्या

2.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- साहित्यदर्पण– विश्वनाथ, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1957.
- नाट्यशास्त्र– भरतमुनि, गायकवाड़ ऑरियन्टल सीरीज, बड़ौदा।
- नाट्यदर्पण– रामचन्द्र गुणचन्द्र (हिन्दी व्याख्या) दिल्ली विश्वविद्यालय, 1961
- दशरूपकम्– डॉ0 श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ–2, वि0स0– 2036, 1969 ई0

2.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) i) 36 ii) प्रसिद्ध iii) श्रृंगार iv) एक v) भाण vi) व्यायोग
2) नाटक में मुख, प्रतिमुख, गर्भ, विमर्श और निर्वहण पाँच सन्धियाँ होती हैं।
3) प्रकरण का नायक धीरप्रशान्त कोटि का होता है।
4) भाण का इतिवृत्त कविकल्पित होता है।
5) सौगन्धिकाहरण व्यायोग कोटि का रूपक है।
6) समवकार में नायकों की संख्या 12 होती है।
7) समुद्रमन्थन समवकार कोटि का रूपक है।

बोध प्रश्न 2

1) i) सत्य ii) असत्य iii) असत्य iv) सत्य v) सत्य vi) असत्य
2) i) रौद्र ii) प्रख्यात, उद्धत iii) करुण iv) कविकलिपत v) कन्दर्पकेलि

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 3 प्रमुख नाट्यकार एवं उनके नाटक

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप :

- भास, कालिदास, शूद्रक आदि नाटककारों के जीवन-वृत्त के विषय में जान सकेंगे।
- भासादि नाटककारों के नाटकों से परिचित होंगे।
- भासादि नाटककारों की शैलीगत विशिष्टताओं से परिचित होंगे।
- संस्कृत नाट्य-साहित्य के कुछ अन्य नाटककारों यथा मुरारि, राजशेखर, दिङ्नाग आदि के विषय में जान सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

इस खण्ड की प्रथम एवं द्वितीय इकाई में आपने संस्कृत नाट्य साहित्य के इतिहास एवं रूपक भेदों का अध्ययन किया। इस इकाई में आप संस्कृत नाट्य साहित्य के प्रमुख नाटककारों यथा भास, कालिदास, शूद्रक, हर्ष आदि के जीवन-वृत्त, कर्तृत्व एवं शैलीगत वैशिष्ट्य का अध्ययन करेंगे। आचार्यों ने अपने-अपने ग्रन्थों में रूपक भेदों के लक्षणों को उद्धृत किया है। उन लक्षणों को आधार बनाकर भास कवि ने नाटक एवं एकांकी का प्रणयन किया तो कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम्, मालविकग्निमित्रम् नाटक का प्रणयन कर संस्कृत नाट्य साहित्य के कोश में वृद्धि की। शूद्रक प्रणीत मृच्छकटिक प्रकरण तात्कालिक सामाजिक व्यवस्था को समझने का मुख्य स्रोत है तो विशाखदत्त के मुद्राराक्षस से राजनैतिक विषयों की जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रकार इस इकाई में आप नाट्य साहित्य के नाटककारों, उनकी रचनाओं और शैलीगत वैशिष्ट्य का अध्ययन करेंगे।

3.2 भास

भास संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ नाटककार हैं। यहाँ आप उनके जीवन-वृत्त, कर्तृत्व एवं शैलीगत वैशिष्ट्य का अध्ययन करेंगे।

3.2.1 जीवन-वृत्त

संस्कृत नाट्य साहित्य में सर्वप्रथम नाटककार भास का नाम आता है। भास को मानव जीवन के नाना क्षेत्रों को देखने तथा नाटकों को अंकित करने का अवसर मिला इसलिये इनके नाटकों में विविधता विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। भास संस्कृत साहित्य की एक पहेली भी हैं। 1912 ई0 तक सम्पूर्ण विश्व में संस्कृत के विद्वान् केवल भास के नाम से ही परिचित थे; उनकी रचनाएँ अप्राप्त थीं। 1912 ई0 में केरल के प्रख्यात संस्कृतज्ञ श्री टी. गणपति शास्त्री ने घोषणा की कि उन्हें प्रख्यात नाटककार भास के रूपकों की अब तक अप्राप्त पाण्डुलिपियाँ मिल गयी हैं और अगले वर्ष उन्होंने 13 नाटकों की पाण्डुलिपियों को भासनाटकचक्र के नाम से प्रकाशित कराया।

भास का समय निर्धारण करना कठिन समस्या है। ए.बी. कीथ के मतानुसार भास का समय 300 ई0 के लगभग है। इसके लिये कीथ ने प्रमाण भी दिये हैं। वस्तुतः यह मत इस पूर्वाग्रह पर आधारित है कि कालिदास गुप्तकाल में चौथी पाँचवी शताब्दी में हुए हैं। अब अधिकांश विद्वान् कालिदास का काल प्रथम शताब्दी ई0पू0 मानने के पक्ष में हैं। ऐसे समय में उनका समय 300 ई0 कैसे माना जा सकता है। भास के नाटकों का सामाजिक चित्रण छठीं से चौथी शताब्दी ई0पू0 के भारत की ओर संकेत करता है। उनके नाटकों के भरतवाक्यों में भी नन्दवंश के किसी राजा की ओर संकेत जान पड़ता है। अन्तरंग और बहिरंग दोनों प्रमाणों के आधार पर भास का स्थितिकाल चौथी या पाँचवी शताब्दी ई0पू0 निश्चित होता है।

3.2.2 कर्तृत्व

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भास ने कई रूपक लिखे थे। राजशेखर ने भासनाटकचक्र इस संज्ञा का प्रयोग भास की रचनाओं के लिये किया है। यह संज्ञा तभी सम्भव है, जब भास के कई नाटक मिलते हों। भास के नाम से टी. गणपति शास्त्री ने तेरह रूपक प्रकाशित किए। विषयवस्तु की दृष्टि से इनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

1) इनमें चार रूपक लोककथा पर आधारित है–

   स्वप्नवासवदत्तम, प्रतिज्ञायौगन्धरायण, अविमारकम् तथा चारुदत्तम्।

2) छह रूपक महाभारत की कथा को विषय बनाकर लिखे गए हैं–

   मध्यमव्यायोग, पञ्चरात्रम्, दूतवाक्यम्, दूतघटोत्कचम्, कर्णभारम् तथा उरुभंगम्।

3) दो रूपक रामायणाश्रित हैं– प्रतिमानाटकम् तथा अभिषेकनाटकम्।

4) एक रूपक श्रीकृष्ण को प्रस्तुत करने वाला है– बालचरितम्।

वास्तव में इन रूपकों के कर्तृत्व को लेकर विद्वानों में मतभेद है। मुख्य रूप से इस विषय में चार मत प्रचलित हैं। पहले मत के अनुसार ये तेरहों रूपक भास के रचे हुए ही हैं। टी. गणपति शास्त्री, कीथ, लक्ष्मण स्वरूप, देवधर आदि अनेक विद्वान सभी तेरहों रूपकों का प्रणेता महाकवि भास को ही सिद्ध करते हैं।

लोककथा पर आधारित 4 रूपकों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

1) **स्वप्नवासवदत्तम्** –''स्वप्नवासवदत्तम्'' निःसन्देह विश्व साहित्य में सर्वश्रेष्ठ नाटकों में से एक है। इस नाटक में छः अंक हैं। यह नाटक राजा उदयन की कथा पर आधारित है। मन्त्री यौगन्धरायण का ''वासवदत्ता अग्नौ प्रविष्टा'' ''वासवदत्ता अग्नि में भस्म हो गई'' इस प्रवाद को विस्तृत कर उदयन का पद्मावती से विवाह करने तथा उदयन के अपहृत राज्य का वर्णन है। चरित्र-चित्रण में भास ने अपनी नाट्यकला का अद्भुत चित्र खींचा है। शुद्ध तथा विशद प्रेम का ऐसा वर्णन किया है तथा नाटकीय घटनाओं की ऐसी मनोहारिणी संगति दिखलाई है कि स्वाभाविकता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। वास्तव में यह नाटक संस्कृत साहित्य का एक जाज्वल्यमान रत्न है।

   ''स्वप्नवासवदत्तम्'' का कथा संविधान कौतुक और नाटकीयता से भरपूर है। नाटकीय विडम्बनाओं और विसंगतियों के अभिप्राय का अत्यन्त मार्मिक प्रयोग नाटक में भास ने किया है। दर्शक तो प्रारम्भ में ही यौगन्धरायण की सारी कूट

योजना से अवगत हो जाते हैं और वे अवंतिका के वेष में नाटक की नायिका वासवदत्ता को आद्यन्त पहचानते रहते हैं पर पद्मावती नहीं जानती कि जिसे साधारण स्त्री बताकर धरोहर के रूप में उसे सौंपा जा रहा है वह कौशाम्बी की महारानी वासवदत्ता है। नाटक के चौथे और पाँचवें अंक तो नाट्यकला और भावजगत् की रचना में अद्वितीय ही हैं।

2) **प्रतिज्ञायौगन्धरायण** – प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटक में चार अंक हैं। इसमें उदयन और वासवदत्ता के प्रेम और विवाह का वर्णन है। मन्त्री यौगन्धरायण द्वारा उदयन को राजा प्रद्योत के यहाँ से छुड़ाने तथा उनकी नीति-वैशिष्ट्य का वर्णन है। नाटकीय संविधान की दृष्टि से ''प्रतिज्ञायौगन्धरायण'' विश्वनाट्यसाहित्य में अपने ढंग का अनोखा नाटक है। वीर रस की भी इस नाटक में विशिष्ट रूप में ही अवतारणा की गयी है। घटनाक्रम का बार-बार अप्रत्याशित रूप में नयी दिशा में मुड़ जाना दर्शकों में कौतूहल बनाये रखता है।

3) **अविमारकम्**– इस नाटक में छः अंक हैं। इसमें राजकुमार अविमारक का राजा कुन्तिभोज की पुत्री राजकुमारी कुरंगी के साथ प्रणय विवाह वर्णित है। लोककथाओं के बहुविध अभिप्राय इसमें संक्रान्त हुए हैं। यह रूपक आद्यन्त विविध घटनाओं के ताने-बाने में बुना हुआ है। इसमें शृंगार रस की प्रधानता है जिसके साथ अद्भुत रस ने कथा में चमत्कार ला दिया है।

4) **चारुदत्तम्**– यह चार अंको का अपूर्ण नाटक है। शूद्रक कृत मृच्छकटिक के प्रथम चार अंको के लगभग सभी संवादों और कथायोजना का इस रूपक से साम्य है। इसमें निर्धन किन्तु उदार ब्राह्मण चारुदत्त और वसन्तसेना नाम की वेश्या के प्रणय सम्बन्ध का वर्णन है। सम्भवतः यह नाटक माननीय भास की अन्तिम कृति है जिसको वे पूर्ण नहीं कर सके।

महाभारत की कथा पर आश्रित छः रूपकों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

5) **मध्यमव्यायोग** –यह एकांकी नाटक है तथा व्यायोग है। मध्यम पाण्डव भीम द्वारा घटोत्कच के हाथ से एक ब्राह्मण पुत्र की रक्षा करना और भीम को पुत्रदर्शन से आनन्दानुभूति तथा हिडिम्बा मिलन का रसास्वाद इस नाटक में वर्णित है।

6) **पञ्चरात्रम्** – इसमें तीन अंक हैं। यज्ञ की समाप्ति पर द्रोण ने दुर्योधन से दक्षिणा माँगी कि पाण्डवों को आधा राज्य दे दो। दुर्योधन ने कहा कि यदि पाँच रात्रि में पाण्डव मिल जायेंगे तो ऐसा कर दूँगा। द्रोण के प्रयत्न से पाण्डवों का मिलना तथा आधा राज्य प्राप्त करना इस नाटक में वर्णित है।

7) **दूतवाक्यम्** – यह भी एक एकांकी नाटक है। महाभारत के युद्ध से पूर्व श्रीकृष्ण का पाण्डवों की ओर से सन्धि प्रस्ताव लेकर दुर्योधन की सभा में जाना और विफल मनोरथ लौटने का इस नाटक में वर्णन है।

8) **दूतघटोत्कच** – यह एकांकी श्रेणी का एक अद्वितीय नाटक है। अभिमन्यु की मृत्यु के पश्चात् श्रीकृष्ण का घटोत्कच को दूत रूप से धृतराष्ट्र के पास भेजना, दुर्योधन द्वारा अपमान, अन्त में दुर्योधन का कथन है कि मैं अपने बाणों द्वारा

उनका उत्तर दूँगा इत्यादि कथा इस नाटक में वर्णित है। घटोत्कच शान्ति और सन्धि का आवाहन करता है पर कौरवपक्षीय लोग उसका उपहास करते हैं।

9) **कर्णभार** – कर्णभार भी एकांकी नाटक है। इसमें कर्ण का ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र को दान में कवच और कुण्डल देने का वर्णन है।

10) **उरुभंग** – यह एक एकांकी नाटक है। द्रौपदी के अपमान के प्रतिकार स्वरूप भीम द्वारा दुर्योधन की जंघा को भंग करके उसके वध का वर्णन है। संस्कृत साहित्य में यह दुःखान्त नाटक है। उरुभंग में करुण रस प्रधान है। दुर्योधन के चरित्र का अत्यन्त उज्जवल और प्रभावशाली रूप यहाँ अंकित है जो अपनी मृत्यु के समय अपनी उदात्तता और मनुष्य की गरिमा को जिस मार्मिक रूप में प्रस्तुत करता है, वह भारतीय साहित्य में अप्रतिम ही है।

रामायण पर आश्रित दो रूपकों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है –

11) **प्रतिमानाटकम्** – प्रतिमा तथा अभिषेक इन दोनों नाटकों के द्वारा भास ने रामायण की सम्पूर्ण कथा को नाटकीय स्वरूप में विनयस्त किया है। इस नाटक में सात अंक हैं। राम का वनवास, सीताहरण, रावण वध और राम के राज्याभिषेक इस नाटक के वर्ण्य-विषय हैं। इस नाटक से प्राचीन भारत में कला विषयक नवीन वृत्तान्तों का पता चलता है।

12) **अभिषेकनाटकम्** – इस नाटक में भी छः अंक हैं। इसमें रामायण के किष्किन्धाकाण्ड से युद्धकाण्ड तक की सम्पूर्ण कथा संक्षेप में वर्णित है। अन्त में रावण-वध के पश्चात् राम के राज्याभिषेक का वर्णन किया गया है। यह नाटक वीर रस से परिपूर्ण है।

कृष्ण कथा पर आश्रित रूपक का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है–

13) **बालचरित** – यह रूपक श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं को प्रस्तुत करता है। इसमें श्रीकृष्ण के जन्म से कंसवध तक की कथा वर्णित है। इसमें पाँच अंक हैं। वीर और अद्भुत रसों की निरन्तर व्याप्ति तथा असाधारण पराक्रम के चित्रण के कारण भी यह नाटक उल्लेख्य है।

3.2.3 शैलीगत वैशिष्ट्य

भास ने अपने नाटकों में वैदर्भी रीति का प्रयोग किया है। उनकी शैली में प्रसाद, माधुर्य और ओज गुण का समन्वय देखने को मिलता है। उनकी भाषा में एक विचित्र अनूठापन है। वाक्य हैं तो बड़े छोटे-छोटे परन्तु उनमें विचित्र भाव भरा हुआ है–

अहो बलमहो वीर्यमहो सत्त्वमहो जवः।
रामः इत्यक्षरैरल्पैः स्थाने व्याप्तमिदं जगत्।। (प्रतिमानाटक– 5/14)

भास की कविता कामिनी अपने स्वाभाविक पद विन्यास के लिए जितनी प्रसिद्ध है उतनी ही अपने भावों के लिए भी प्रसिद्ध है। पितृभक्ति, पातिव्रत्य, भ्रातृप्रेम, त्याग आदि गुण उनके नाटकों में स्थान-स्थान पर परिलक्षित होते हैं। पातिव्रत्य धर्म का निर्वाहन करते हुए ही सीता राम के साथ वन जाती हैं –

अनुचरति शशाङ्कं राहुदोशेऽपि तारा
पतति च वनवृक्षे याति भूमिं लता च।
त्यजति न च करेणुः पङ्कलग्नं गजेन्द्रं
व्रजतु चरतु धर्मं भर्तृनाथा हि नार्यः।। (प्रतिमानाटक–1/25)

भास मानव हृदय के विकारों के सच्चे पारखी हैं। प्रकृति वर्णन, रस योजना, संवाद कौशल, नाटकीय तत्त्वों के प्रयोग, घटना संयोजन में भास अत्यन्त कुशल हैं। उन्होंने अन्तःप्रकृति और बाह्य प्रकृति दोनों का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया है। उन्होंने प्रकृति वर्णन में प्रसाद गुण का प्रयोग किया है। भास ने प्रतिमानाटक में द्रुत गति से चलते हुए रथ का बड़ा ही स्वाभाविक और सजीव वर्णन किया है –

द्रुमा धावन्तीव द्रुतरथगतिक्षीणविषया
नदीवोद्वृत्ताम्बुर्निपतति मही नेमिविवरे।
अरव्यक्तिर्नष्टा स्थितमिव जवाच्चक्रवलयं
रजश्चाश्वोद्धूतं पतति पुरतो नानुपतति।। (प्रतिमानाटक– 3/2)

भास के नाटकों में मुख्यतया श्रृंगार और वीर रस का प्रयोग देखा जाता है। उनके नाटकों में करुण, रौद्र, हास्य आदि रस अंग के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। श्रृंगार रस का वर्णन पाठकों को जितना सहज, सरस और आकर्षक लगता है तो वीर रस का प्रयोग भी पाठकों में उदात्तता और उत्साह का संचार करता है। अलंकारों के प्रयोग में उपमा और स्वभावोक्ति अलंकार पर इनका विशेष स्नेह सहज ही देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अनुप्रास, यमक, श्लेष, अर्थान्तरन्यास, विरोधाभास आदि अलंकारों का भी प्रयोग किया है। भास संवाद तत्त्व के विशेष मर्मज्ञ हैं इसलिए इनके रूपक शास्त्र की दृष्टि से सरल, सुबोध तथा अभिनेय हैं।

3.3 कालिदास

महाकवि कालिदास का नाम संस्कृत साहित्य में ही नहीं वरन् विश्व साहित्य में बड़े आदर के साथ लिया जाता है। इकाई के इस अंश में आप उनके जीवन-वृत्त, कर्तृत्व और शैलीगत वैशिष्ट्य का अध्ययन करेंगे।

3.3.1 जीवन-वृत्त

महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के श्रेष्ठ कवि एवं नाटककार हैं। इनके जीवन-वृत्त के विषय में अनेक दन्तकथायें प्रचलित हैं। कुछ विद्वान् इन्हें विक्रमादित्य की राजसभा के नवरत्नों में एक मानते हैं किन्तु उन नवरत्नों में जिनके साथ इनकी गणना की गई है वे विभिन्न कालों के हैं और विक्रमादित्य की पहचान करना भी कठिन है। 'भोजप्रबन्ध' नामक कथाग्रन्थ में भोज की राजसभा में संस्कृत के सभी कवियों को दिखाया गया है जिनमें कालिदास प्रमुख थे। एक किंवदन्ती के अनुसार कालिदास सिंहल नरेश कुमारदास के मित्र थे। उनका अन्तिम समय लंका में ही बीता था वहाँ एक वेश्या ने धन के लोभवश इनकी हत्या कर दी थी। कालिदास के विषय में एक किंवदन्ती यह भी प्रचलित है कि ये वज्रमूर्ख थे। इनका विवाह विद्वानों ने षड्यन्त्र रचकर विदुषी विद्योत्तमा से करवा दिया। तदनन्तर पत्नी से तिरस्कृत होकर इन्होंने काली की उपासना की और कवित्व शक्ति अर्जित कर कुमारसम्भवम्, रघुवंशम्, मेघदूतम् जैसे ग्रन्थों की रचना कर संस्कृत साहित्य को समृद्ध बनाया।

महाकवि कालिदास के ग्रन्थों का जब हम अध्ययन करते हैं तो यह ज्ञात होता है कि ये जन्मना ब्राह्मण और शिवभक्त थे। इन्होंने शिव के अतिरिक्त अन्य देवताओं के प्रति भी अपनी श्रद्धा प्रकट की है। रघुवंशम् और मेघदूतम् में जिस प्रकार से भौगोलिक स्थानों का वर्णन किया है उससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि इन्होंने भारत की विस्तृत यात्रा की थी। इनकी रचनाओं में कहीं भी कष्ट, दारिद्रय आदि का वर्णन न होने से यह प्रतीत होता है कि इनका भौतिक जीवन सुखद था।

महाकवि कालिदास किस स्थान के निवासी थे? इस विषय में भी विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वान् इन्हें बंगाली, कुछ कश्मीरी, कुछ उज्जयिनी का निवासी सिद्ध करने का प्रयास करते हैं किन्तु महाकवि के उज्जयिनी वर्णन को पढ़कर ऐसी प्रतीति होती है कि इन्होंने उज्जयिनी को बड़े ही निकट से देखा और समझा है। मेघदूतम् में इन्होंने उज्जयिनी नगरी के प्रति जिस प्रकार का आदरभाव व्यक्त किया है उससे यह कहा जा सकता है कि ये उज्जयिनी के निवासी थे।

महाकवि का काल निर्धारण करना भी विद्वानों के समक्ष किसी चुनौती से कम नहीं था। इस विषय में भी विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रकट किए हैं और उनके काल को सिद्ध करने का प्रयास किया है। विद्वानों ने इन्हें प्रथम शताब्दी ई.पू., तृतीय शताब्दी ई., चतुर्थ शताब्दी ई. का उत्तरार्द्ध, पंचम शताब्दी ई. का स्वीकार किया है और इस पक्ष में अपने मत भी प्रस्तुत किए हैं। इन मतों में प्रथम शताब्दी ई.पू. का मत नितान्त सटीक जान पड़ता है जो अधिकांश विद्वानों को मान्य है।

3.3.2 कर्तृत्व

महाकवि कालिदास की सात कृतियाँ प्रसिद्ध हैं जिनमें रघुवंशम् और कुमारसम्भवम् महाकाव्य, ऋतुसंहार और मेघदूतम् गीतिकाव्य तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम्, मालविकाग्निमित्रम् नाटक है। कालिदास विरचित नाटकों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

1) **मालविकाग्निमित्रम्** – मालविकाग्निमित्रम् के पाँच अंकों में राजा अग्निमित्र तथा मालविका के विवाह की कथा वर्णित है। विपत्तियों से ग्रस्त मालविका वन में वीरसेन को प्राप्त होती है जो उसे धारिणी के पास पहुँचा देता है। वहाँ वह दासी के रूप में रहती है किन्तु अग्निमित्र की प्रेयसी बन जाती है। गणदास मालविका को नृत्य संगीत की शिक्षा देते हैं। धारिणी मालविका को राजा से दूर रखने का प्रयत्न करती है किन्तु राजा उसे चित्र में देखकर उस पर मुग्ध हो जाता है। विदूषक मालविका को राजा के समक्ष लाने का प्रयास करता है। इसी बीच नाट्यादास गणदास और हरदत्त के बीच योग्यता को लेकर विवाद हो जाता है। उसका निर्णय करने के लिए कैशिकी के आदेशानुसार दोनों आचार्य अपनी शिष्याओं से नृत्य और अभिनय कराने की बात मान लेते हैं। द्वितीय अंक में मालविका का नृत्य होता है और गणदास की विजय होती है। इस प्रदर्शन को देखकर राजा मालविका पर अत्यन्त मुग्ध हो जाता है। तृतीय अंक में प्रमदवन में राजा और मालविका की भेंट होती है। चतुर्थ अंक में धारिणी मालविका और उसकी सखी को कारागार में डाल देती है। विदूषक रानी की अगूँठी दिखाकर उन दोनों को कारागार से मुक्त कराता है। पंचम अंक में विदर्भ से आई दो सेविकाओं से रानी को मालविका का परिचय मिलता है वह अग्निमित्र और मालविका का विवाह करा देती है।

2) **विक्रमोर्वशीयम्** – विक्रमोर्वशीयम् पाँच अंकों का त्रोटक नाम उपरूपक है। इसमें राजा पुरुरवा और उर्वशी की प्रणय कथा का वर्णन है। पुरुरवा केशी राक्षस से आक्रान्त उर्वशी की रक्षा करता है। राजा और उर्वशी एक दूसरे पर आसक्त हो जाते हैं। विदूषक की अकुशलता से उर्वशी का प्रेमपत्र देवी औशीनरी को मिल जाता है। वह राजा पर कुपित होती है। राजा किसी प्रकार उसका क्रोध शान्त करते हैं। स्वर्ग में भरत द्वारा निर्देशित एक नाटक में उर्वशी अभिनय करते हुए 'पुरुषोत्तम विष्णु' के स्थान पर पुरुरवा का नाम ले लेती है। कुपित होकर भरतमुनि उसे पुत्रदर्शन तक मृत्युलोक में रहने का शाप देते हैं। वह राजा पुरुरवा के पास रहने लगती है। राजा पर कुपित होकर उर्वशी एकदिन गन्धमादन उपवन में चली जाती है। वहाँ शापवश वह लता बन जाती है। शोक से व्याकुल राजा आकाशवाणी के अनुसार संगमनीय मणि लेकर लतारूपी उर्वशी का आलिंगन कर उसको पूर्वरूप में ले आते हैं। च्यवन ऋषि के आश्रम में उर्वशी को अपने पुत्र का दर्शन होता है और उर्वशी स्वर्ग चली जाती है। नारद इन्द्र लोक से आकर यह सूचना देते हैं कि इन्द्र को युद्ध में पुरुरवा की सहायता चाहिए। पुरुरवा इन्द्र की सहायता करते हैं। इन्द्र उर्वशी को सदैव पुरुरवा के साथ रहने का वर देते हैं और भारतवाक्य के साथ नाटक की समाप्ति हो जाती है।

3) **अभिज्ञानशाकुन्तलम्**– अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक समग्र संस्कृत साहित्य का सर्वोत्कृष्ट नाटक है। इसमें कुल सात अंक हैं। इसमें दुष्यन्त और शकुन्तला के प्रणय, वियोग तथा पुनर्मिलन की कथा वर्णित है। हस्तिनापुर के राजा दुष्यन्त मृगया करते हुए संयोगवश कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँच जाते हैं जहाँ उनका शकुन्तला से साक्षात्कार होता है। उसके जन्म की कथा सुन लेने के बाद उनके हृदय में उस मुनिकन्या के प्रति अनुराग उत्पन्न होता है। शकुन्तला भी आभिजात्य और पौरुष की प्रत्यक्ष प्रतिमा महाराज दुष्यन्त के प्रति आकर्षित होती है। दोनों गान्धर्व विधि से विवाह-सूत्र में बँध जाते हैं। इस नाटक की कथावस्तु का विस्तृत अध्ययन आप इकाई 12 में करेंगे।

3.3.3 शैलीगत वैशिष्ट्य

कालिदास की नाट्यकला संस्कृत साहित्य का गौरव है और पूर्णतया मौलिक है। वे भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि कवि हैं। माधुर्य का मधुर सन्निवेश, प्रसाद की स्निग्धता, पदों की सरस शय्या, अर्थ का सौष्ठव, अलंकारों का मंजुल रसमय प्रयोग, जो कुछ उन्नत काव्य की विशेषताएं हैं वे उनके काव्यों में विद्यमान है। श्रृंगार, करुण, वीर आदि सभी रसों की सफल अभिव्यक्ति है। रीति एवं प्रसादादि गुण तथा नाटकीय संविधान सभी उच्चकोटि के हैं। उपमा के लिये तो कालिदास प्रसिद्ध हैं **''उपमाकालिदासस्य''**। अन्त में हम यह कह सकते हैं कि कालिदास की सर्वतोन्मुखी प्रतिभा, उनकी महाकाव्य, नाटक तथा खण्डकाव्य की रचना में अपूर्व क्षमता, उनकी प्रसाद तथा लालित्यपूर्ण शैली, उनकी नित-नूतन कल्पनाएं, उनका शब्दलाघव और आवश्यकतानुकूल अलंकारो की छटा देखकर उनको न केवल संस्कृत के साहित्य में वरन् विश्व साहित्य में भी विशिष्ट स्थान प्रदान करने को हम विवश हैं। कालिदास की कविता कामिनी के वैभव को देखकर ही उनको ''कविकुलगुरु कालिदासो विलासः'' कविता का विलास कहा गया है। प्रिय विद्यार्थियों! आप कलिदास के शैलीगत वैशिष्ट्य का विस्तृत अध्ययन इकाई 12 में करेंगे।

3.4 शूद्रक

इकाई के इस अंश में आप मृच्छकटिक नामक प्रकरण के प्रणेता शूद्रक के जीवन-वृत्त, कर्तृत्व एवं शैलीगत वैशिष्ट्य का अध्ययन करेंगे।

3.4.1 जीवन-वृत्त

प्रसिद्ध प्रकरण ''मृच्छकटिक'' के रचयिता राजा शूद्रक को कुछ विद्वान् एक कल्पित व्यक्ति मानते हैं। शूद्रक के व्यक्तित्व पर अभी तक प्रामाणिक रूप से कोई प्रमाण नहीं मिलता है। इस विषय में ऐतिहासिक अनुसन्धान की आवश्यकता है। संस्कृत साहित्य में शूद्रक के विषय में अनेक दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। ''कादम्बरी'', ''कथासरित्सागर'', ''वेतालपंचविंशतिका'', ''हर्षचरित'', ''राजतरंगिणी,'' ''स्कन्दपुराण'' आदि ग्रन्थों में शूद्रक का उल्लेख प्राप्त होता है। ''मृच्छकटिक'' की प्रस्तावना में शूद्रक का परिचय दो श्लोकों में दिया गया है। उसमें उनकी मृत्यु का भी वर्णन है किन्तु किसी भी कवि का अपनी ही रचना में स्वयं अपनी मृत्यु का उल्लेख करना असम्भव है। अतः प्रस्तावना में ये श्लोक प्रक्षिप्त प्रतीत होते हैं। कीथ का मत है कि किसी अज्ञात कवि– रौमिल या सौमिल्ल या दोनों– ने भास के ''चारुदत्त'' नाटक को परिवर्धित कर उसे ''मृच्छकटिक'' का नाम दिया और प्रसिद्ध राजा शूद्रक के नाम से उसे प्रचारित किया।

मृच्छकटिक के रचनाकाल का विचार करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है। कालिदास के नाटकों में ''मृच्छकटिक'' की कुछ छाप दृष्टिगोचर होती है। कालिदास का समय लगभग 100 ई0पू0 है। अतः मृच्छकटिक की रचना इससे कुछ पूर्व अवश्य हो चुकी होगी। कालिदास के अनुसार ''मृच्छकटिक'' के रचयिता रौमिल और सौमिल्ल रहे होंगे क्योंकि इन्हीं का उल्लेख उन्होंने अपने ''मालविकाग्निमित्रम्'' में किया है। अतः मृच्छकटिक कालिदास के पूर्व की रचना है। मृच्छकटिक में आठ प्रकार की प्राकृत भाषाओं का प्रयोग हुआ है। अतः मृच्छकटिक की रचना इन ग्रन्थों से पहले ही हुई होगी। ''मृच्छकटिक'' भास के ''चारुदत्त'' नाटक का परिवर्धित रूप जान पड़ता है। अतः इसकी रचना भास के बाद अर्थात् तृतीय शताब्दी ई0पू0 में हुई होगी। मृच्छकटिक का कर्त्ता दाक्षिणात्य (महाराष्ट्र) का निवासी है ऐसा प्रतीत होता है। उज्जयिनी में दक्षिण के लोग भी राज्य के पदों पर प्रतिष्ठित रहा करते थे। चन्दनक ऐसा ही एक पदाधिकारी था। इसी हेतु मृच्छकटिक के वर्णनों में दक्षिण भारत में प्रचलित शब्दों का प्रयोग तथा प्रथाओं का वर्णन मिलता है। दण्डी के कथन से भी शूद्रक की राजधानी उज्जयिनी ही प्रकट होती है।

3.4.2 कर्तृत्व

शूद्रक की केवल एक कृति ''मृच्छकटिक'' ही उपलब्ध है। दण्डी तथा वामन इत्यादि के उल्लेखों से प्रतीत होता है कि शूद्रक की अन्य भी कोई रचना रही होगी किन्तु वह आज उपलब्ध नहीं है। कुछ वर्ष पूर्व 'पद्यप्राभृतक'' नामक एक ''भाण'' दक्षिण भारत में प्रकाशित हुआ है। इसके सम्पादक का कथन है कि मृच्छकटिक के कर्त्ता की ही रचना है। अभी इसकी वास्तविकता के विषय में कुछ कहना कठिन है। सम्पादक श्री बल्लभदेव ने यह भी बतलाया है कि ''वत्सराजचरित'' (वीणावासवदत्त) भी शूद्रक की तृतीया रचना है तथा सम्भवतः शूद्रक की चतुर्थ रचना ''कामदत्त'' नामक एक प्रकरण ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सम्भवतः

इनके अनुशीलन से मृच्छकटिक के रचयिता के जीवन तथा समय पर विशेष प्रकाश पड़ सकेगा।

1) **मृच्छकटिक** – ''मृच्छकटिक'' 10 अंकों का एक प्रकरण है। पहले अंक का नाम 'अलंकारन्यास' है। प्रथम अंक में रास्ते में अँधेरी रात में विट तथा चेट के साथ शकार वसन्तसेना का पीछा कर रहा है। दूसरे अंक का नाम 'द्यूतकर संवाहक' है। संवाहक पहले चारुदत्त की सेवा में था वह जुएँ में बहुत सा धन हार जाता है। तीसरे अंक का नाम 'सन्धिच्छेद' है, वसन्तसेना की दासी मदनिका को शर्विलक सेवा से मुक्त कराना चाहता है। अतः वह चारुदत्त के घर में आभूषणों की चोरी करता है। चतुर्थ अंक का नाम 'मदनिका शर्विलक' है जिसमें शर्विलक आभूषणों को लेकर वसन्तसेना के घर जाता है। वसन्तसेना मदनिका को सेवा मुक्त कर देती है। पाँचवे अंक का नाम 'दुर्दिन' है। इसमें वर्षा का विस्तृत वर्णन है। षष्ठ अंक का नाम 'प्रवहण विपर्यय' है इसमें वसन्सेना भूलवश शकार की गाड़ी मे बैठ जाती है और आर्यक चारुदत्त की गाड़ी मे बैठ जाता है। सप्तम अंक का नाम 'आर्यकापहरण' है। इसमें चारुदत्त आर्यक के बन्धन कटवाकर उसे अभयदान प्रदान करता है। अष्टम अंक का नाम 'वसन्तसेनामोटन' है। इसमें शकार का प्रणय निवेदन अस्वीकार करने पर वह वसन्तसेना का गला घोंट देता है। नवम अंक का नाम 'व्यवहार' है। शकार चारुदत्त पर वसन्तसेना को मारने का अभियोग लगाता है। 'संहार' नामक दशम अंक में उसी समय राज्य परिवर्तन होता है। वसन्तसेना के साथ चारुदत्त का विवाह सम्पन्न होता है। इसी के अन्तिम मिलन के साथ यह रुपक समाप्त होता है।

3.4.3 शैलीगत वैशिष्ट्य

संस्कृत साहित्य में 'मृच्छकटिक' का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह अत्यन्त लोकप्रिय प्रकरण है। 'मृच्छकटिक' संस्कृत का एकमात्र यथार्थवादी रूपक है। इस प्रकारण में शूद्रक ने बड़ी कुशलता से प्रेम के कथानक को राजनीतिक घटनाओं के साथ सम्बद्ध किया है। इसकी कथावस्तु में घटनाचक्र की गतिशीलता है। सम्पूर्ण कथावस्तु दृढ़ सूत्र में बँधी हुई है जिसकी कथा सामाजिक के चित्त को अपनी ओर आकर्षित करती है। चरित्र-चित्रण की ओर यदि दृष्टिपात् करें तो यह स्पष्ट परिलक्षित होता है कि मृच्छकटिक में सभी प्रकार के पात्रों की सृष्टि कर शूद्रक ने तत्कालीन समाज का बड़ा ही सजीव एवं यथार्थ चित्र उपस्थित किया है। 25 पुरुष पात्रों तथा 7 स्त्री पात्रों से युक्त यह प्रकरण सामान्य समाज को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने में पूर्ण समर्थ है। चारुदत्त, विदूषक (मैत्रेय), वसन्तसेना, मदनिका, शर्विलक, शकार, विट, चेट आदि सभी पात्र अपने-अपने चरित्र के अनुरूप भावों को अभिव्यक्त करते हैं।

शूद्रक ने गद्य और पद्य दोनों के लिए सरल शैली का प्रयोग किया है। उनके संवाद सरल तथा संक्षिप्त हैं। उनमें वाग्विदग्धता तथा व्यंग्य का दर्शन होता है। शूद्रक के संवाद सरल तथा संक्षिप्त हैं उनमें 'वाग्विदग्धता' तथा व्यंग्य का दर्शन होता है। हास्य रस की अभिव्यंजना में तो यह संस्कृत साहित्य का सर्वश्रेष्ठ नाटक है। मृच्छकटिक नाटक का प्रत्येक पात्र अपना निजी व्यक्तित्व लेकर सामने आता है। यह रूपक अनेक पद्यों एवं सूक्तियों से सुशोभित है। इनमें कहीं व्यावहारिक आदर्श है, कहीं जीवन की शिक्षाएं हैं तथा कहीं काव्य सौन्दर्य विद्यमान है। इसकी भाषा-शैली सरल एवं रोचक है। वह नाट्य के सर्वथा अनुकूल है। यहाँ पात्रों के अनुकूल भाषा का प्रयोग किया गया है। विविध प्राकृत भाषाओं के सफल प्रयोग की दृष्टि से तो मृच्छकटिक अद्वितीय

है। मृच्छकटिक में तत्कालीन समाज का सच्चा चित्रण प्राप्त होता है। केवल राजवर्ग या भ्रान्तवर्ग को ही नहीं, अपितु सामान्य समाज को भी शूद्रक ने बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। अतः मृच्छकटिक एक जनकाव्य है।

3.5 विशाखदत्त

एकमात्र राजनीतिक नाटक 'मुद्रराक्षस' की रचना कर संस्कृत साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाने वाले विशाखदत्त का विशेष स्थान है। यहाँ आप उनके जीवन-वृत्त, कर्तृत्व एवं शैलीगत वैशिष्ट्य का अध्ययन करेंगे।

3.5.1 जीवन-वृत्त

एकमात्र राजनीतिक नाटक 'मुद्रराक्षस' के प्रणेता विशाखदत्त का संस्कृत नाट्य साहित्य में विशेष स्थान है। मुद्राराक्षस की प्रस्तावना से यह ज्ञात होता है कि विशाखदत्त राजपरिवार में उत्पन्न हुए थे। इनके पिता महाराज पृथु एवं पितामह वटेश्वरदत्त थे। परिणामतः राजनीति के क्षेत्र में इनकी विशेष रुचि थी। शायद यही कारण रहा होगा कि इन्होंने मुद्राराक्षस जैसे नाटक का प्रणयन किया। कुछ लोग 'देवीचन्द्रगुप्त' को भी विशाखदत्त की ही रचना मानते हैं। नाट्यदर्पण एवं भोज के शृङ्गारप्रकाश से इस नाटक के विषय में जानकारी मिलती है। छः या सात अंकों के इस नाटक में भी विशाखदत्त ने चन्द्रगुप्त द्वितीय के द्वारा शकों की पराजय एवं सौराष्ट्र विजय का वर्णन किया है।

मुद्राराक्षस नाटक में विशाखदत्त मगध के प्रति विशेष आदरभाव प्रदर्शित करते हैं। पाटलिपुत्र एवं उसके समीपवर्ती क्षेत्रों के वर्णन से ऐसी प्रतीति होती है कि ये मगध के निवासी थे, उसी राज्य के प्रमुख सामन्तों के परिवार में इनका जन्म हुआ था। इनकी पारिवारिक उपाधि दत्त थी। इन्होंने मुद्राराक्षस के मंगलाचरण में शिव की तथा भरतवाक्य में विष्णु की स्तुति की है, अतः इन्हें ब्राह्मण धर्म का अनुयायी कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त मुद्राराक्षस में बौद्ध धर्म के वर्णन से यह प्रतीत होता है कि बौद्ध धर्म के प्रति भी वे श्रद्धा का भाव रखते थे।

विशाखदत्त के काल निर्धारण में अन्तःसाक्ष्य एवं बहिःसाक्ष्य का आश्रय लिया जाता है। अन्तःसाक्ष्यों पर यदि दृष्टिपात् करें तो मुद्राराक्षस के भरतवाक्य में म्लेच्छों के आक्रमण की चर्चा, प्रस्तावना में वर्णित चन्द्रग्रहण तथा जैन और बौद्ध धर्म के प्रति उनके विचार उनका काल निर्धारण करने में साक्ष्य उपस्थित करते हैं। मुद्राराक्षस में 'पार्थिवोऽवन्विर्मा', 'पार्थिवो दन्तिवर्मा' आदि पाठ मिलते हैं। उन्होंने गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (375-423 ई.) की ओर संकेत किया है। ये अवन्तिवर्मा कन्नौज के मौखरि राजा थे जिनका समय छठीं शताब्दी ई. का उत्तरार्द्ध था। इस आधार पर विशाखदत्त का समय 550-600 ई. माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त भरतवाक्य में म्लेच्छों के आक्रमण और उनकी पराजय, चन्द्रग्रहण और विशाखदत्त की जैन और बौद्ध धर्म के प्रति आस्था भी इन्हें 600 ई. से पूर्व का ही सिद्ध करती है।

बहिःसाक्ष्यों में दशरूपक और सरस्वतीकण्ठाभरण में मुद्राराक्षस के श्लोक प्राप्त होते हैं किन्तु यह ग्रन्थ नितान्त बाद के हैं। अतः इनके आधार पर विशाखादत्त का काल निर्धारण करना उचित नहीं होगा।

3.5.2 कर्तृत्व

सुभाषित ग्रन्थों में दिए गए उद्धरणों से पता चलता है कि विशाखदत्त ने ''मुद्राराक्षस'' और ''देवीचन्द्रगुप्त'' के अतिरिक्त ''राघवानन्द'' नामक एक और नाटक की रचना की थी, पर यह कृति अब उपलब्ध नहीं है।

1) **मुद्राराक्षस** – विशाखदत्त प्रणीत मुद्राराक्षस भारतीय कूटनीति से ओत-प्रोत एक ऐतिहासिक नाटक है। वीर रस प्रधान इस नाटक का नायक चाणक्य है। नायिका एवं विदूषक रहित सात अंकों वाले इस नाटक में चाणक्य व आमात्य राक्षस के बुद्धिकौशल का विशाखदत्त ने वर्णन किया है। इस नाटक के प्रथम अंक में चाणक्य को राक्षस के तीन विश्वासपात्र सम्बन्धियों क्षपणक जीवसिद्धि, कायस्थ शकटदास तथा श्रेष्ठी चन्दनदास के सम्बन्ध में गुप्तचरों से सूचना मिलती है तथा राक्षस की एक मुद्रा भी प्राप्त होती है, जो राक्षस की पराजय का कारण बनती है। द्वितीय अंक में राक्षस की कूटनीतिक पराजय का प्रथम दर्शन होता है। चाणक्य की जागरुकता के परिणामस्वरूप चन्द्रगुप्त की हत्या की राक्षस की योजना विफल हो जाती है। तृतीय अंक में कौमुदी महोत्सव निषेध का वर्णन किया गया है। नाटक के चतुर्थ अंक में राक्षस को अपनी योजना की असफलता का पता चलता है। राक्षस पर्वतेश्वर के पुत्र मलयकेतु से सम्पर्क स्थापित कर उसे चन्द्रगुप्त की जगह नन्दवंश के सिंहासन पर बैठाने की योजना बनाता है। पंचम अंक में नाटक की मुख्य कथा का वर्णन है। इस अंक में मुद्रित लेख तथा आभूषण के साथ सिद्धार्थक पकड़ा जाता है परिणामस्वरूप मलयकेतु का विश्वास राक्षस से हट जाता है और वह राक्षस का विरोधी बन जाता है। राक्षस के विरोध के परिणामस्वरूप मलयकेतु अपने सहयोगियों के साथ पकड़ लिया जाता है तथा राक्षस को पकड़ने का प्रयास किया जाता है। छठें अंक में राक्षस चन्दनक की प्रवृत्ति जानने के लिए कुसुमपुर लौट जाता है जहाँ उसे चन्दनदास को दिए जाने वाले मृत्युदण्ड की सजा की सूचना मिलती है। सातवें अंक में चन्दनदास को फाँसी के लिए वधस्थान पर ले जाया जाता है, जहाँ उसकी पत्नी व पुत्र विलाप कर रहे हैं। स्वयं को इस विपत्ति से बचाने के लिए उसका मित्र राक्षस वहाँ उपस्थित होता है और चाणक्य की मित्रता स्वीकार कर चन्द्रगुप्त का आमात्य बनना स्वीकार करता है। इसी घटना के साथ नाटक का अन्त होता है।

3.5.3 शैलीगत वैशिष्ट्य

विशाखदत्त प्रणीत मुद्राराक्षस नाटक अनेक दृष्टियों से संस्कृत साहित्य में अद्वितीय है। विशाखदत्त ने पारम्परिक नाट्य विषयों के समान इस नाटक में न तो प्रणय का वर्णन किया है और न ही नायिका और विदूषक को नाटक का पात्र बनाया है। विशाखदत्त का यह नाटक पाठकों के लिए ऐतिहासिक तथ्यों एवं चरित्रों को जानने और समझने का एक कोश है। वास्तव में वीर रस प्रधान यह नाटक आदि से लेकर अन्त तक ओजस्विता, पौरुष और ऊर्जस्व से ओत-प्रोत है।

मुद्राराक्षस नाटक में कुल 29 पात्र हैं, इसमें चन्दनदास की पत्नी एकमात्र स्त्री पात्र है जो सप्तम अंक में दिखाई देती है। शेष सभी पात्र अपनी-अपनी चारित्रिक विशिष्टताओं के अनुरूप चाणक्य तथा राक्षस के कार्य में सहयोग देते हैं। सम्पूर्ण नाटक में इन दोनों पात्रों के संघर्ष का ही वर्णन प्राप्त होता है। मुद्राराक्षस की शैली प्रवाह,

प्रसादिकता और ओज लिए हुए है। इसके वाक्य छोटे-छोटे और मुहावरेदार हैं। दीर्घ समास-बहुल पदावली का प्रयोग कम हुआ है। अलंकारों का प्रयोग सीमित मात्रा में ही किया गया है। विशाखदत्त ने पद्यों के बाहुल्य से अपनी नाटकीय शैली को कृत्रिम नहीं बनाया है। उनका शब्द-विन्यास बड़ा ही सशक्त और प्रभावशाली है। पद्य की अपेक्षा उनका गद्य अधिक ओजपूर्ण है। कहीं-कहीं व्यंग्यपूर्ण हास्य का भी पुट दिया गया है। संलापों में स्वाभाविकता है। नपे-तुले शब्दों में जोरदार भाषा प्रयुक्त हुई है। मुद्राराक्षस में नाटककार ने श्लेष का अपेक्षाकृत अधिक प्रयोग किया है। यह श्लेष अधिकतर व्यंग्यार्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। विशाखदत्त के गद्य में जहाँ ओज है वहाँ उनके पद्यों में स्थल-स्थल पर लालित्यमय प्रवाह है।

बोध प्रश्न 1

1) निम्नलिखित प्रश्नों में सत्य तथा असत्य कथन का चयन कीजिए –

i) महाकवि भास ने 12 नाटकों का प्रणयन किया – ( )

ii) चारुदत्तम् नाटक में चार अंक हैं – ( )

iii) महाकवि कालिदास विक्रमादित्य के नवरत्नों में एक थे – ( )

iv) मृच्छकटिक के प्रणेता विशाखदत हैं – ( )

v) मृच्छकटिक एक प्रकरण ग्रन्थ है – ( )

vi) मुद्राराक्षस ऐतिहासिक नाटक है – ( )

अभ्यास प्रश्न 1

1) भास कवि की शैलीगत वैशिष्ट्य पर प्रकाश डालिए।

2) कालिदास के नाटकों पर संक्षेप में लिखिए।

3) विशाखदत्त का जीवन परिचय लिखिए।

3.6 हर्ष

इकाई के इस अंश में आप हर्ष के जीवन-वृत्त, कर्तृत्व एवं शैलीगत वैशिष्ट्य का अध्ययन करेंगे।

3.6.1 जीवन-वृत्त

संस्कृत साहित्य के लिए यह सौभाग्य की बात है कि हर्ष के विषय में जानने और समझने के लिए हमारे पास पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। बाण ने हर्षचरित में तथा चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने यात्रा विवरण में हर्ष के जीवन और व्यक्तित्व से सम्बन्धित पक्षों को उद्धृत किया है। यह सर्वमान्य तथ्य है कि 606 ई. से 648 ई. तक हर्ष का शासन काल था। ह्वेनसांग ने भी हर्ष के शासन में ही 629 ई. से 641 ई. के मध्य भरत का भ्रमण किया था। वह बहुत दिनों तक हर्ष की राजसभा में ही रहा।

हर्ष के पिता प्रभाकरवर्धन ने 588 ई. में अवन्तिवर्मा के साथ मिलकर हूणों को परास्त किया था। प्रभाकरवर्धन के तीन पुत्रों में हर्ष का स्थान दूसरा है। हर्ष ने अपनी कूटनीति से बाल्यावस्था में ही अपने राज्य स्थाणीश्वर को इतना विस्तृत कर लिया कि पूरा उत्तरी भारत उसके अधिकार में आ गया। हर्ष केवल वीर ही नहीं अपितु श्रेष्ठ

विद्वान् और कवि भी थे। इन्होंने प्रियदर्शिका, रत्नावली तथा नागानन्द नामक तीन नाटकों की रचना की है।

3.6.2 कर्तृत्व

महाकवि हर्ष ने तीन नाटकों की रचना की है। 'प्रियदर्शिका', 'रत्नावली' और 'नागानन्द'। इन कृतियों के सम्बन्ध में कुछ आलोचकों का कहना है कि ये हर्ष की रचनाएँ नहीं हैं। उन्होंने अपने किसी आश्रित कवि (बाण का धावक) द्वारा उन्हें लिखवाकर अपने नाम से प्रचलित किया। इतना तो निश्चित है कि उक्त तीनों रचनाएँ एक ही कवि की लेखनी से प्रसूत हैं क्योंकि इन तीनों नाटकों की प्रस्तावना में एक ही रचयिता हर्ष का उल्लेख हुआ है।

'प्रियदर्शिका' और 'नागानन्द' में दो श्लोक समान हैं तथा एक श्लोक 'प्रियदर्शिका' और 'रत्नावली' में भी अभिन्न है। इन तीनो नाटकों की शैली में भी पूर्ण साम्य है। अब प्रश्न यह होता है कि इनके रचयिता कौन थे? कुछ टीकाकारों के अनुसार धावक नामक किसी कवि ने रत्नावली आदि की रचना हर्ष के नाम से करके प्रचुर सम्पत्ति प्राप्त की थी किन्तु इस किंवदन्ति के समर्थन में कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिलता। हर्ष स्वयं एक अच्छे कवि थे। बाण ने उनकी काव्य चातुरी की प्रशंसा अपने हर्षचरित में की है। जयदेव ने उन्हें ''कविताकामिनी का हर्ष'' कहा है। अतः यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि इन तीनों नाटकों की रचना हर्ष की लेखनी से ही हुई है।

1) **प्रियदर्शिका** – प्रियदर्शिका हर्ष की प्रथम रचना है। प्रियदर्शिका का सम्बन्ध भी उदयन के कथाचक्र के साथ है, यह भी चार अंकों की एक प्रणय नाटिका है। इसमें राजा उदयन के अन्तःपुर की प्रेम कहानी चित्रित है। इस नाटिका में तथा कालिदास के मालविकाग्निमित्रम् में पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होता है। राजा दृढवर्मा युद्ध में हार जाते हैं। उनकी कन्या प्रियदर्शिका दुर्घटना के कारण राजा उदयन के अन्तःपुर में पहुँच जाती है। वहाँ वह आरण्यिका नाम से रानी की दासी बनकर रहती है। उदयन उस पर मुग्ध हो जाते हैं। अन्तःपुर के रंगमंच पर उदयन और वासवदत्ता के विवाह का अभिनय होता है, जिसमें आरण्यिका वासवदत्ता बनती है और उदयन स्वयं उदयन। यह अभिनय प्रेम का अभिनय न रहकर वास्तविक हो जाता है। वासवदत्ता क्षुब्ध होकर अरण्यिका को कारागार में डाल देती है। अरण्यिका के विषपान कर लेने पर उसको विष उतारने वाले उदयन के समक्ष लाया जाता है। तभी दृढवर्मा का कंचुकी मूर्च्छित राजकुमारी को पहचान लेता है। इससे वासवदत्ता को पश्चाताप होता है और वह राजा और अरण्यिका का विवाह करवा देती है। अपनी प्रसादिक शैली, वस्तु रचना की सरलता, अनेक रोचक घटनाओं एवं अवस्थाओं की सृष्टि तथा कतिपय उत्कृष्ट वर्णनों द्वारा हर्ष अपनी प्रियदर्शिका नाटिका को रोचक बनाने में सफल हुए।

2) **रत्नावली** – रत्नावली संस्कृत साहित्य की सफल नाटिका है। रत्नावली में चार अंक हैं। इसमें वत्सराज उदयन तथा उनकी रानी वासवदत्ता की परिचारिका सागरिका की रोचक प्रेम-कथा वर्णित है। नायिका वास्तव में सिंहल देश की राजकन्या रत्नावली है, जो दुर्घटनावश दासी का कार्य कर रही है। अन्त में इस रहस्य का उद्घाटन होने पर नायक-नायिका का विवाह हो जाता है। रत्नावली में प्रधान रस श्रृंगार है। इसका नायक धीरललित है। कथानक कौतूहल से परिपूर्ण है। घटनाएँ नाटकीय ढंग से घटित होती हैं। रत्नावली अभिनय की

दृष्टि से भी सफल कृति है। वेष विपर्यय का दृश्य बड़ा रोचक हुआ है। काव्य सौन्दर्य के साथ-साथ इसमें चरित्र-चित्रण भी विशद् हुआ है। नाट्यशास्त्र के नियमों का इसमें पूर्णतया पालन हुआ है।

3) **नागानन्द** – नागानन्द में पाँच अंक हैं। जीमूतवाहन नामक राजकुमार के आत्मत्याग का बौद्ध आख्यान इसमें वर्णित है। जीमूतवाहन एक विद्याधर राजकुमार है। राजा मित्रवसु की भगिनी मलयवती से उसका विवाह होता है। एकदिन मित्रवसु के साथ टहलते समय जीमूतवाहन हड्डियों का ढेर देखता है। उसे ज्ञात होता है कि दिव्य पक्षी गरुड़ को प्रतिदिन साँपो की भेंट चढ़ाई जाती है। यह उन्हीं मरे हुए साँपो की हड्डियों का ढेर है। वह निश्चय करता है कि मैं प्राणों का बलिदान करके भी इस हत्याकांड को रोकूँगा।

नागानन्द पर ''बौद्धधर्म'' की छाप स्पष्ट दिखाई पड़ती है। नायक और मलयवती के प्रेम का भी इस नाटक मे वर्णन किया गया है। प्राणियों के प्रति दया तथा आत्मोत्सर्ग की भावना का इस नाटक में सुन्दर निदर्शन हुआ है।

3.6.3 शैलीगत वैशिष्ट्य

हर्ष के नाटकों में कथानक का संयोजन, चरित्र-चित्रण, रस-योजना, अलंकार योजना आदि का सुन्दर समन्वय प्राप्त होता है। प्रियदर्शिका नाटिका में गर्भनाटक की कल्पना तथा रत्नावली नाटिका में ऐन्द्रजालिक का समावेश कवि की उन्मुक्तता का परिचायक है। उनके नाटकों के अन्त में अद्भुत रस का सुन्दर समन्वय देखा जा सकता है। हर्ष की रत्नावली नाटिका नाट्यशास्त्रियों के बीच अत्यधिक लोकप्रिय रही है।

हर्ष ने अपने रूपकों में वैदर्भी रीति का प्रयोग किया है। उनके रूपकों की भाषा नितान्त सहज, सरस एवं प्रसादपूर्ण है। उनमें दुरूह शब्दों और कठिन समासों का प्रायः अभाव है। उन्होंने अपने नाटकों में विलासमय प्रणय का सुन्दर चित्रण करने के साथ भारतीय मर्यादा की रक्षा भी की है। श्रृंगार, अद्भुत, शान्त, हास्य, करुण आदि रसों का सुन्दर प्रयोग इनके नाटकों की विशेषता है।

3.7 भवभूति

उत्तररामचरितम् नाटक के प्रणेता भवभूति का संस्कृत साहित्य में विशेष स्थान है। इकाई के इस अंश में आप भवभूति के जीवन-वृत्त, कर्तृत्व एवं शैलीगत वैशिष्ट्य का अध्ययन करेंगे।

3.7.1 जीवन-वृत्त

संस्कृत साहित्य में भवभूति एक श्रेष्ठ नाटकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। इन्होंने मालतीमाधव की प्रस्तावना में अपने विषय में उल्लेख किया है जिससे यह ज्ञात होता है कि ये पद्मपुर के निवासी थे। यह नगर प्राचीन वाकाटक नरेशों की राजधानी के रूप में प्रतिष्ठित था। इनका जन्म काश्यप गोत्र के तैत्तिरीय शाखाध्यायी ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके पितामह का नाम भट्टगोपाल, पिता का नाम नीलकण्ठ तथा माता का नाम जतुकर्णी था। भवभूति के नाटकों से यह ज्ञात होता है कि इन्हें वेद, दर्शन, धर्मशास्त्र, व्याकरण, काव्यशास्त्र आदि का ज्ञान था।

भवभूति का कालनिर्धारण पूर्वापर सीमा के आधार पर सफलतापूर्वक किया जा सकता है। बाण ने अपने ग्रन्थ हर्षचरित में भवभूति का उल्लेख नहीं किया है। इससे यह सिद्ध होता है कि भवभूति का काल 650 ई. के बाद का ही होगा। वहीं वामन जिनका समय 300 ई. के लगभग है, ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकारसूत्रवृत्ति' में भवभूति के पद्यों को उद्धृत किया है। अतः भवभूति 750 ई. के पूर्व ही होंगे। 'राजतरंगिणी' और 'गउडवहो' के आधार पर भी भवभूति का काल 750 ई. के बीच ही माना गया है।

3.7.2 कर्तृत्व

भवभूति संस्कृत के सर्वोच्च महाकवियों में गिने जाते हैं। इन्होंने तीन नाटक लिखे हैं – महावीरचरित नाटक, मालतीमाधवम् प्रकरण तथा उत्तररामचरितम् नाटक। भवभूति के तीनों नाटकों का अभिनय, जैसा कि उनकी प्रस्तावना से मालूम पड़ता है, भगवान कालप्रियनाथ के उत्सव पर हुआ था। विद्वानों की सम्मति में उज्जयिनी के महाकाल महादेव का ही दूसरा नाम कालप्रियनाथ है। महावीरचरित तथा मालतीमाधव की प्रस्तावना से पता चलता है कि भवभूति की नटों से घनिष्ठ मित्रता थी, अतः यह स्पष्ट है कि भवभूति के नाटक अभिनय के ही लिये लिखे गये थे।

1) **मालतीमाधवम्** – यह 10 अंकों का प्रकरण नाटक है। इसमें मालती तथा माधव और मकरन्द तथा मदयन्तिका के प्रणय एवं परिणय कथा का कवि ने वर्णन किया है। इसमें नायक और नायिका के प्रणय में बाधा होने पर कामन्दकी दोनों की सहायता करती है। मदयन्तिका पर सिंह का आक्रमण, मकरन्द द्वारा सिंह का मारा जाना, माधव का सिद्धि प्राप्ति के लिए श्मशान जाना, मालती को बलि देने की तैयारी, मालती का अपहरण जैसी अनेक रोमांचक घटनाओं से यह प्रकरण युक्त है।

2) **महावीरचरित** – भवभूति प्रणीत महावीरचरित नाटक में सात अंक हैं। इसमें रामायण के बालकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड तक की कथा का वर्णन है। इसके प्रथम अंक में शिव धनुष तोड़कर राम सीता से विवाह करते हैं। इस पर रावण के क्रुद्ध होने का वर्णन महाकवि ने किया है। द्वितीय अंक में रावण का मन्त्री माल्यवान् राम के विरुद्ध परशुराम को उकसाता है। तृतीय अंक में राम और परशुराम के मध्य वाक्युद्ध का वर्णन है। चतुर्थ अंक में राम-परशुराम वाक्युद्ध में परशुराम पराजित होते हैं। माल्यवान् के षड्यन्त्र से शूर्पणखा कैकेयी की दासी मन्थरा के रूप में कैकेयी का पत्र राम को देती है कि दशरथ के वर के अनुसार राम 14 वर्ष वन में रहें और भरत राजा बनें। पंचम अंक में सीता हरण, जटायु-रावण युद्ध, विभीषण-राम मिलन, बाली वध आदि घटनाओं का वर्णन है। छठें अंक में राम-रावण युद्ध और रावण वध की कथा वर्णित है। सप्तम अंक में सीता की अग्निपरीक्षा, राम का अयोध्या आगमन और राज्याभिषेक का वर्णन किया गया है।

3) **उत्तररामचरितम्** – भवभूति प्रणीत 'उत्तररामचरितम्' में सात अंक हैं। रामायण कथा आश्रित इस नाटक के नायक राम और नायिका सीता हैं तथा करुण अंगी रस है। नाटक के प्रथम अंक में राज्याभिषेक के पश्चात् प्रजानुरंजन में रत श्रीरामचन्द्र जी का वर्णन किया गया है। कुछ समय पश्चात् चित्रकारों द्वारा निर्मित आलेख्यवीथिका में लक्ष्मण, राम व सीता को ले जाते हैं। चित्रदर्शन द्वारा सीता के मन में वन विहार एवं गंगा दर्शन की इच्छा उत्पन्न होती है। उसी

समय दुर्मुख नामक दूत के द्वारा सीता विषयक लोकोपवाद की सूचना मिलती है। अन्त में राम के आदेशानुसार लक्ष्मण सीता को वाल्मीकीय आश्रम में छोड़ आते हैं। द्वितीय अंक में वासन्ती और आत्रेयी के संवाद से सीता विषयक विभिन्न तथ्यों की जानकारी मिलती है। उसी समय रामचन्द्र जी शम्बूक वध हेतु दण्डकारण्य में प्रवेश करते हैं तथा पहले देखे गए दृश्यों को देखकर मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। शम्बूक वध के पश्चात् रामचन्द्र जी अगस्त आश्रम की ओर प्रस्थान करते हैं। तृतीय अंक छायांक के नाम से प्रसिद्ध है। इसमें राम पंचवटी में प्रवेश करते हैं। तमसा-मुरला नामक दो नदी देवताओं के संवाद द्वारा वासन्ती से लव-कुश व सीता विषयक वार्ता को सुनकर राम मूर्च्छित हो जाते हैं तब अदृश्यरूपधारिणी सीता राम को होश में लाती हैं। तदनन्तर अश्वमेध यज्ञ के सम्पादन हेतु राम अयोध्या लौट जाते हैं। चतुर्थ अंक में वसिष्ठ-अरुन्धती, राम की मातायें तथा जनक जी अतिथि रूप में वाल्मीकि आश्रम में प्रवेश करते हैं। इस अंक में जनक, अरुन्धती तथा कौशल्या के बीच सीता परित्याग से उत्पन्न स्थिति का बहुत ही मार्मिक वर्णन किया गया है। अंक के अन्त में लव-कुश द्वारा राम के अश्वमेधीय घोड़े को पकड़ने की घटना का वर्णन है। पंचम अंक में चन्द्रकेतु तथा लव के बीच लम्बा संवाद होता है। उसके पश्चात् भीषण संग्राम प्रारम्भ होता है। छठें अंक में लव चन्द्रकेतु संग्राम में राम जी का पदार्पण होता है। युद्ध बन्द होता है। दोनों श्रीराम को प्रणाम करते हैं। लव तथा कुश में सीता की आकृति की समानता देखकर राम प्रसन्न होते हैं तथा वहाँ उपस्थित वसिष्ठ, जनक, कौशल्या आदि को प्रणाम करते हैं। सप्तम अंक गर्भांक है। इस अंक में प्रजा के समक्ष नाटक खेला जाता है जिसमें गंगा तथा पृथ्वी देवता सीता को निर्दोष सिद्ध कर रामचन्द्र को समर्पित करती हैं। जृम्भकास्त्र की सिद्धि से लव-कुश का राम का पुत्र होना निश्चित हो जाता है तथा भरतवाक्य के साथ नाटक की समाप्ति होती है।

3.7.3 शैलीगत वैशिष्ट्य

संस्कृत भाषा पर भवभूति का असामान्य अधिकार था। वास्तव में भाषा एक दासी की भाँति उनके संकेतों पर चलती है। भवभूति की शैली का विशेष गुण उनका समुचित शब्द विन्यास है। उनका शब्द-शोधन अद्वितीय है। वे अवसर के अनुरूप भाषा का प्रयोग करते हैं। उनकी भाषा तथा भावों में अनुपम सामंजस्य है। भवभूति ललित एवं सुकुमार भावों का वर्णन करते समय समासरहित सरल मधुर पदावली का प्रयोग भी करते हैं। गौडी शैली के धुरन्धर आचार्य होते हुए भी वे वैदर्भी रीति के प्रयोग में पारंगत हैं। क्लिष्ट से क्लिष्ट और सरल से सरल भाषा के प्रयोग में समान रूप से कुशल हैं। भवभूति की रचनाओं में काव्यकला का भावपक्ष ही प्रधान है और कलापक्ष गौड़। मानवीय मनोभावों के विश्लेषण और मार्मिक चित्रण में भवभूति अद्वितीय हैं। भवभूति की भाषा और अभिव्यक्तियाँ संस्कृत कविता में ताजी हवा का झोंका लेकर आती हैं। अनेक अछूते बिम्बों और कल्पनाओं से उन्होंने अपने काव्यसंस्तर को परिपुष्ट किया है। भवभूति ने अपने नाटकों में श्रृंगार, हास्य, वीर, अद्भुत् आदि सभी रसों का प्रयोग किया है किन्तु वे करुण रस के प्रयोग में सिद्धहस्त थे। उत्तररामचरितम् नाटक में उन्होंने करुण रस का सुन्दर निदर्शन किया है। तृतीय अंक में करुण रस का परिपाक अपने चरम पर है –

एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्।
भिन्नः पृथक पृथगिवाश्रयते विर्वतान्।। (उत्तररामचरितम्– 3/47)

भवभूति की उपमायें अपनी नवीनता के कारण आकर्षित करती हैं। भवभूति ने अनुष्टुप् जैसे लघु कलेवर के छन्द का जितनी कुशलता से प्रयोग किया है उतनी ही सिद्धहस्तता के साथ वे लम्बे छन्दों का प्रयोग करते हैं। भवभूति के छन्द प्रयोग की एक बड़ी विशेषता विषय तथा भाव के अनुरूप छन्दों का चयन है।

3.8 अन्य नाटककार

इकाई के इस अंश में आप संस्कृत साहित्य के कुछ अन्य नाटककारों यथा मुरारि, दिङ्नाग, जयदेव आदि के विषय में अध्ययन करेंगे।

3.8.1 मुरारि

भारतीय नाट्यपरम्परा में भास, कालिदास और भवभूति ये तीन शिखर हैं। भवभूति के पश्चात् आज तक संस्कृत में नाट्यरचना की प्रवृत्ति निरन्तर विकसित होती रही और अनेक दिशाओं में सम्पन्न रचनात्मकता को प्रकट करती रही है। मुरारि के पिता मौद्गल्यगोत्रीय श्रीवर्धमान भट्ट थे। इनकी माता का नाम तन्तुमती था। अपने पाण्डित्य के प्रकर्ष और कवित्व के द्वारा उन्होंने 'महाकवि' और 'बाल वाल्मीकि' की उपाधि प्राप्त की थी। मुरारि का उल्लेख कश्मीरी कवि रत्नाकर ने अपने महाकाव्य 'हरविजय' में किया है। हरविजय की रचना 859 ई0 के आसपास हुई। अतएव मुरारि का समय 800 ई0 के आसपास माना जा सकता है। मुरारि नवीं-दसवीं शताब्दी के आस-पास सारे भारत में ख्याति पा चुके थे।

मुरारि का अनर्घराघव नाटक प्राप्त है। अनर्घराघव सात अंकों का नाटक है। इस पर भवभूति के महावीरचरित की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। अनर्घराघव नाटक रामकथा पर आधारित है। इसमें विश्वामित्र के द्वारा राम और लक्ष्मण को यज्ञ की रक्षा के लिये ले जाने के प्रसंग से लेकर रावण-वध के पश्चात् राम के अयोध्या लौटने तक की कथा नाटकीय रूप में प्रस्तुत की गयी है।

मुरारि की शब्दराशि विशाल है, इनकी पदशय्या प्रौढ़ एवं गम्भीर है। इनकी उपमायें प्रायः मौलिक हैं। इनके पद्यों का नाद-सौन्दर्य दर्शनीय है। मुरारि की काव्यात्मक कल्पना बड़ी उर्वर है और इन्होंने अछूते उपमानों से संस्कृत काव्यधारा को समृद्ध करने का प्रयास किया है। श्रृंगार रस में मुरारि की सर्वाधिक रुचि थी। मुरारि अपने पद सौष्ठव तथा व्याकरण के पाण्डित्य के लिये विशेष रूप से सराहे जाते हैं। अनुप्रास तथा श्लेष अलंकार इन्हें विशेष प्रिय था।

3.8.2 राजशेखर

राजशेखर महाराष्ट्र की यायावर नामक क्षत्रिय जाति में उत्पन्न हुए थे। उनके पिता का नाम दुर्दुव और माता का नाम शीलावती था। उनके पिता ''महाराष्ट्रचूड़ामणि'' अकालजलद थे। इनके वंश में सुरानन्द तरल और कविराज जैसे यशस्वी कवि हुए थे। इनका विवाह चाहमान (चौहान) जाति की अवन्तिसुन्दरी नामक एक सुशिक्षित महिला के साथ हुआ था। बालरामायण में इन्होंने अपने को वाल्मीकि, भर्तृमेण्ठ तथा

भवभूति का अवतार बताया है। राजशेखर का स्थितिकाल (900 ई0) के लगभग माना जाता है।

राजशेखर ने चार नाटकों की रचना की– कर्पूरमंजरी, विद्वशालभंजिका, बालरामायण और बालभारत या प्रचण्डपाण्डव। बालरामायण में राजशेखर ने अपने को छः कृतियों का रचयिता बतलाया है। इसमें चार उक्त नाटक हैं। पाँचवाँ ''काव्यमीमांसा'' नामक अलंकार ग्रन्थ है। छठाँ हेमचन्द्र के अनुसार ''हरिविलास'' नामक महाकाव्य है। ''काव्यमीमांसा'' में राजशेखर ने अपने ''भुवनकोष'' नामक एक भौगोलिक ग्रन्थ का उल्लेख किया है। सूक्तिसंग्रहों में भी राजशेखर के नाम से कई पद्य मिलते हैं।

1) **कर्पूरमंजरी**– यह प्राकृत भाषा में चार अंकों का एक ''सट्टक'' (नृत्य प्रधान नाटक) है। इसका कथानक रत्नावली के समान है। इसमें राजा चन्द्रपाल और कुन्तल राजकुमारी कर्पूरमंजरी की प्रणय कथा वर्णित है। कर्पूरमंजरी का पदलालित्य दर्शनीय है। कर्पूरमंजरी नाटिका के पद्यों में महाराष्ट्री और गद्य में शौरसेनी प्राकृत प्रयुक्त हुई है। इसकी प्राकृत में कई प्रान्तीय तथा देशज शब्द आये हैं। नृत्य और संगीत के आद्यन्त समायोजन ने इसे रंगमंच के लिए आकर्षक बना दिया है। कर्पूरमंजरी में हास्य रस का भी अनूठा चित्रण हुआ है।

2) **बालभारत या प्रचण्डपाण्डव** – इस नाटक में दो ही अंक प्राप्त होते हैं। यह महाभारत की कथा पर आधारित नाटक है। प्राप्त दो अंकों में द्रौपदी का स्वयंवर तथा द्यूतक्रीड़ा और द्रौपदी के वस्त्रहरण की घटनाएँ चित्रित हैं।

3) **विद्वशालभंजिका** – यह चार अंको की नाटिका है। इसका भी कथानक कर्पूरमंजरी के समान ही अत्यन्त रोचक है। वासुदेव विष्णु मिराशी ने इसके कतिपय प्रसंगों को ऐतिहासिक माना है। इसमें उल्लिखित पयोष्णी नदी के तट पर हुआ युद्ध युवराजदेव और राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द चतुर्थ के बीच 966 ई0 में हुआ। नाटिका में उल्लिखित वीरपाल युवराजदेव का जामाता अमोघवर्ष है, जिसका पक्ष लेते हुए युवराजदेव ने युद्ध किया। इसमें चार अंको में लाटदेश के राजा चन्द्रवर्मा की पुत्री मृगांकवती तथा राजा विद्याधरमल्ल के गुप्तविवाह की कथा निरूपित है।

4) **बालरामायण** – यह दस अंकों का महानाटक है। इसमें रामायण की सम्पूर्ण कथा प्रस्तुत है। यह रामलीला की प्राचीन परम्परा का स्वरूप भी प्रस्तुत करता है। इसके सभी दस अंक दीर्घाकार हैं और पूरे नाटक का अभिनय एक दिन में होना सम्भव नहीं है। इसमें प्रत्येक अंक का नाम एक-एक लीला पर किया गया है।

राजशेखर के नाटकों में प्रवाह की शिथिलता, हास्य रस की न्यूनता तथा नाट्यकला कौशल का अभाव स्पष्ट दिखाई पड़ता है। भवभूति की भाँति वे भी अपने नाटकों में पद्यों को दोहराते हैं फिर भी उनका छन्द कौशल अनुपम है। स्रग्धरा और शार्दूलविक्रीडित जैसे दीर्घकाय छन्दों के प्रयोग में वे सिद्धहस्त हैं। प्राकृत में इन छन्दों का वे बड़ी कुशलता से प्रयोग करते हैं। उनके पद्यों में रमणीय गीति-सौन्दर्य, चारु शब्द-विन्यास और ध्वन्यर्थक अनुप्रास दर्शनीय हैं। उनके नाटकों में अनेक सुन्दर लोकोक्तियाँ पाई जाती हैं तथा तत्कालीन सामाजिक जीवन सम्बन्धी रोचक बातें ज्ञात होती हैं। उनका भाषा-कौशल अद्‌भुत है।

3.8.3 दिङ्नाग

'कुन्दमाला' नामक नाटक सन् 1923 में मद्रास में प्रकाशित हुआ है। कुछ विद्वानों का कथन है कि उसके रचयिता 5वीं शताब्दी के बौद्ध दार्शनिक दिङ्नाग हैं जिनका उल्लेख 'मेघदूत' के 14वें पद्य में हुआ है और जिनको मल्लिनाथ ने उक्त पद्य की अपनी टीका में कालिदास का समकालीन और प्रतिस्पर्धी माना है। इस आधार पर यह भी कहा जाता है कि भवभूति (700 ई0) अपने 'उत्तररामचरित' की रचना में 'कुन्दमाला' से प्रभावित हुए हैं किन्तु नई खोजों के आधार पर उपर्युक्त मत सर्वथा निराधार सिद्ध हो चुका है। 'कुन्दमाला' का सर्वप्रथम उल्लेख रामचन्द्र गुणचन्द्र कृत नाट्यदर्पण (1100 ई0) में मिलता है। भवभूति के पूर्ववर्ती साहित्य में कहीं भी 'कुन्दमाला' का कोई उल्लेख नहीं मिलता। अतएव कुन्दमाला के कर्ता ''दिङ्नाग'' भवभूति के परवर्ती प्रतीत होते हैं और उनका स्थितिकाल (1000 ई0) के लगभग माना जा सकता है क्योंकि 1100 ई0 के पूर्व उनका साहित्य में कहीं उल्लेख नहीं मिलता।

कुन्दमाला नाटक में 6 अंक हैं। कुन्दमाला के प्रथम अंक में लक्ष्मण गर्भवती सीता को राम के आदेश से गंगा तट पर छोड़ आते हैं। महर्षि वाल्मीकि सीता को अपने आश्रम में आश्रय देते हैं। द्वितीय अंक में लवकुश का जन्म होता है। तृतीय अंक में लवकुश और सीता नैमिषारण्य में पहुँचते हैं। चतुर्थ अंक में तिलोत्तमा नामक अप्सरा राम के सम्मुख सीता का रूप धारण करके उन्हें और अधिक सन्तप्त करती है। पंचम अंक में लवकुश राम के सम्मुख रामायण का गान परायण कर रहे हैं। छठें अंक में पृथ्वी-देवी स्वयं प्रकट होकर सबके सम्मुख सीता की पतिव्रता की घोषणा करती हैं और अन्त में राम, सीता, लव और कुश का आनन्ददायक पुनर्मिलन होता है।

कुन्दमाला और भवभूति के उत्तररामचरित में बहुत कुछ समानता दृष्टिगोचर होती है। दोनों का कथानक रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा पर अवलम्बित है। दोनों सुखपर्यवसायी हैं। दिङ्नाग के वर्णन प्रायः रूढ़ि सम्मत होते हैं तथा उनकी कविता भी मध्यम श्रेणी की है फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि उत्तररामचरित जहाँ रस एवं भाव की दृष्टि से सुन्दर एवं श्रेष्ठ है, वहाँ ''कुन्दमाला'' क्रियाशीलता की दृष्टि से अधिक प्रभावोत्पादक है। दिङ्नाग की शैली प्रासादिक और सरल है तथा उनकी भाषा में दुरुहता नहीं है। लम्बे समासों का प्रायः अभाव है। उन्होंने करुण रस की सुन्दर व्यंजना की है। कुन्दमाला में कुछ स्थलों पर खण्डित वाक्य मिलते हैं। उसकी प्राकृत में भी कहीं-कहीं कुछ ऐसे प्रयोग हैं, जिनका संस्कृत रूपान्तर नहीं हो सका है। कुन्दमाला के अधिक अध्ययन तथा प्रचार से इन त्रुटियों पर प्रकाश पड़ने की सम्भावना है।

3.8.4 जयदेव

संस्कृत साहित्य के इतिहास में जयदेव नाम के दो महाकवि विशेष ख्यात हैं– एक प्रसन्नराघव नाटक के रचयिता जयदेव तथा दूसरे गीतगोविन्द काव्य के प्रणेता जयदेव। प्रसन्नराघवकार जयदेव ललित कवि होने के साथ एक प्रखर पण्डित और उच्चकोटि के तार्किक भी थे। न्यायदर्शन के आचार्यों में ये पक्षधर मिश्र के नाम से विख्यात हैं। ये कौडिन्यगोत्र के थे तथा कुण्डिनपुर (विदर्भ) के निवासी थे। इनकी माता का नाम सुमित्रा तथा पिता का नाम महादेव था। पीयूषवर्ष के नाम से भी ये संस्कृत साहित्य में विख्यात हैं। जयदेव का समय 1200 ई0 से 1250 ई0 के लगभग स्वीकार किया जा सकता है।

जयदेव प्राणीत प्रसन्नराघव नाटक सात अंको का है। इसमें रामायण की कथा अनेक रोचक परिवर्तनों के साथ चित्रित है। प्रसन्नराघव नाटक रामकथा पर आधारित नाटकों में बहुत लोकप्रिय रहा है।

आरम्भ के चार अंको में बालकाण्ड की कथा विन्यस्त है। चौथे अंक में राम-सीता विवाह तथा परशुराम के पराभव की कथा है। पाँचवें अंक में घटनाओं के वर्णन में कवि की अनूठी सूझ दिखाई पड़ती है। छठें अंक में विरही राम को विद्याधर माया द्वारा लंका की घटनाएँ दिखाते हैं। सातवें अंक में रावण-वध कर राम आकाश मार्ग से अयोध्या लौट आते हैं। कथागायन की शैली का प्रयोग तथा काव्यात्मक वर्णनों की विपुलता के कारण प्रसन्नराघव की संरचना लीला नाटकों से साम्य रखती है।

जयदेव का संस्कृत भाषा पर असामान्य अधिकार था। उनकी भाषा में अद्भुत विलास एवं लालित्य है। पदशय्या इतनी मसृण एवं उदार है कि भाषा में अपूर्व रमणीयता आ गई है। इनकी शैली बड़ी ही प्रांजल, प्रासादिक परिष्कृत एवं मधुर है। इनकी उपाधि पीयषूवर्ष सर्वथा उचित है। जयदेव के संवादों में नाटकीयता मुग्ध करने वाली है। उक्ति-प्रत्युक्ति और संवादों का चुटीलापन देखते ही बनता है। प्रसन्नराघव में जितना नाटकीय सौन्दर्य नहीं है उससे कहीं अधिक सूक्ति सौन्दर्य है।

बोध प्रश्न 2

1) निम्नलिखित में सही विकल्प पर सही (✓) का निशान लगाइये।

i) हर्ष के पिता का नाम है – राज्यवर्धन/प्रभाकरवर्धन

ii) रत्नावली है – भाण/नाटिका

iii) उत्तररामचरितम् नाटक में अंक हैं – 7/8

iv) राजशेखर की माता का नाम है – शीलावती/कलावती

v) कुन्दमाला नाटक में अंक है – 6/7

vi) प्रसन्नराघव नाटक के प्रणेता हैं – मुरारि/जयदेव।

अभ्यास प्रश्न 2

निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए

क) भवभूति

ख) हर्ष

ग) मुरारि

घ) जयदेव

3.9 सारांश

इस इकाई में आपने संस्कृत नाट्य साहित्य के प्रमुख नाटककारों यथा भास, कालिदास, शूद्रक, विशाखदत्त, हर्ष तथा भवभूति कवि के जीवन-वृत्त, कर्त्तृत्व एवं शैलीगत वैशिष्ट्य का अध्ययन किया। भास का संस्कृत नाट्य साहित्य में प्रमुख स्थान है। उन्होंने रामायण, महाभारत, उदयन की कथा को आधार बनाकर अपने नाटकों का प्रणयन किया। उनके नाटकों में भाषा का सरल और मनोरम प्रयोग देखा जा सकता है। महाकवि कालिदास ने तीन नाटकों का प्रणयन किया जिनमें अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक विशेष प्रसिद्धि है। 'काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला' इस उक्ति वाक्य

से शाकुन्तलम् नाटक की प्रसिद्धि का अनुमान लगाया जा सकता है। शूद्रक कवि प्रणीत मृच्छकटिक प्रकरण में नायक चारुदत्त और वसन्तसेना के प्रणय का वर्णन बड़ी ही सुन्दर शैली में किया गया है। राजपरिवार से सम्बन्ध रखने वाले विशाखदत्त प्रणीत मुद्राराक्षस नाटक संस्कृत साहित्य का ऐसा नाटक है जो विदूषक एवं नायिका से रहित होने के बाद भी पाठकों को अपनी ओर आकर्षित करता है। नागानन्द, रत्नावली और प्रियदर्शिका के प्रणेता हर्ष को कौन नहीं जानता? हर्ष प्रभाकरवर्धन के पुत्र और दानवीर राजा थे। करुण रस के प्रयोग में निष्णात् भवभूति प्रणीत उत्तररामचरितम् में राम और सीता के उदात्त प्रेम का वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त इस इकाई में आपने मुरारि विरचित अनर्घराघव, राजशेखर प्रणीत कर्पूरमंजी आदि नाटक एवं नाटककारों के विषय में जानकारी प्राप्त की।

3.10 शब्दावली

अंकित – लिखा हुआ

संस्कृतज्ञ – संस्कृत को जानने वाला

लोककथा – लोक में प्रचलित कथा

दक्षिणा – दान

मनोरथ – इच्छा

विन्यस्त – स्थापित

जन्मना – जन्म से

साम्य – समानता

3.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) संस्कृत साहित्य का इतिहास– डॉ. उमाशङ्कर शर्मा 'ऋषि', चौखम्भा साहित्य एकेडमी, वाराणसी।

2) संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास– डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी।

3) संस्कृत साहित्य का बृहद् इतिहास– बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी।

3.12 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) (i) असत्य (ii) सत्य (iii) सत्य (iv) असत्य (v) सत्य (vi) सत्य

बोध प्रश्न 2

1) (i) प्रभाकववर्धन (ii) नाटिका (iii) सात (iv) शीलावती (v) छः (vi) जयदेव

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 4 नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द – भाग 1

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- नाटक के प्रमुख पात्र नायक नायिकादि के स्वरूप के बारे में समझ सकेंगे।
- नाटक का पाठन या मंचन करते समय उसमें प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक शब्दों को समझ सकेंगे।
- नाटक की कथावस्तु (विषय-वस्तु) का चयन किस प्रकार होता है, इसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- इन बिन्दुओं के अध्ययन के माध्यम से दृश्य-विधा नाटक का स्वरूप समझ सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रों! 'संस्कृत नाटक' के इस पाठ्यक्रम में आपने नाटकों की उत्पत्ति और विकास, रूपक भेद एवं प्रमुख नाटककारों के विषय में अध्ययन किया। आप जानते हैं कि नाटक दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है इसलिए नाटक को दृश्य काव्य कहा जाता है। इसे अभिनय भी कहते हैं। भरतमुनि प्रणीत 'नाट्यशास्त्र' को नाट्यशास्त्र का प्राचीनतम ग्रन्थ माना जाता है। धनंजय प्रणीत 'दशरूपक' भी नाट्यशास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। डॉ. भोलाशंकर व्यास लिखते हैं कि ''जहाँ काव्य में निबद्ध या वर्णित धीरोदात्तादि नायक तथा तत्प्रकृतिगत नायिका और अन्य पात्र द्वारा आङ्गिकादि अभिनयों के द्वारा अवस्थानुकरण किया जाता है, वह नाट्य है।''

भरतमुनि के 'नाट्यशास्त्र', धनंजय प्रणीत 'दशरूपक', विश्वनाथ प्रणीत 'साहित्यदर्पण' आदि ग्रन्थों में नाटक के तत्त्वों पर प्रकाश डाला गया है। आप जानते हैं कि रूपक के दशविध भेद होते हैं, उन भेदों में इतिवृत्त, नायक, नायिका आदि की प्रधानता होती है। इस इकाई के माध्यम से आप इतिवृत्त, नायक एवं नायिका भेद, पूर्वरङ्ग तथा नान्दी के विषय में अध्ययन करेंगे।

4.2 नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द

प्रिय छात्रों! नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों से सम्बन्धित इकाई के इस अंश में आप नाटक के इतिवृत्त, नायक, नायिका, पूर्वरङ्ग तथा नान्दी का अध्ययन करेंगे।

4.2.1 नाटक इतिवृत्त (कथानक)

कथावस्तु नाटक का एक कविकल्पित शरीर है। धनंजय ने दशरूपक के प्रथम प्रकाश के अन्त में रूपक को **''नेतृरसानुगुण्या कथा''** कहकर सम्बोधित किया है। रस प्रधान है, रस और नायक के अनुकूल ही कथा की रचना की जाती है। रूपककार अपने रूपक के लिए कथा या तो रामायण-महाभारत और इतिहास प्रसिद्ध ग्रन्थों से ग्रहण करता है या कल्पना का आश्रय लेकर कल्पित कथा की रचना करता है। नाट्य तथा अभिनय के ज्ञाता इसे इतिवृत्त भी कहते हैं। नायकादि का चरित्र-वर्णन भी इतिवृत्त कहा जाता है।

नाटक में वर्णित कथानक 'वस्तु' अर्थात् 'कथावस्तु' कही जाती है। इस कथावस्तु का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। नाटक में लोक की अवस्थाओं का अनुकरण किया जाता है। ये अवस्थायें भिन्न-भिन्न प्रकार की होती हैं परन्तु सबसे अधिक हमारी दृष्टि सुखात्मक और दुःखात्मक रूपों पर पड़ती है। नाटक में इन दोनों अवस्थाओं का समान महत्त्व है और इनका चित्रण किया जाता है। रूपकों का प्रथम भेदक धर्म 'वस्तु' ही है। इस वस्तु के ही कथावस्तु इतिवृत्त, प्लाट (Plot) आदि नाम हैं। साहित्य के लक्षण ग्रन्थों में वस्तु दो प्रकार की निर्दिष्ट की गई है – **वस्तु च द्विधा** (दशरूपक– प्रथम प्रकाश)

नाटक के संघटक तत्त्वों के निरूपण के सन्दर्भ में धनंजय स्पष्ट रूप से कहते हैं कि – **वस्तुनेता रसस्तेषां भेदकः** –

तत्राधिकारिकं मुख्यमङ्गं प्रासङ्गिकं विदुः।। (दशरूपक– 1/11)

वस्तु (कथावस्तु), नेता (नायक) एवं रस – ये तीन नाटक के प्रमुख भेदक तत्त्व हैं। कथावस्तु का सम्बन्ध पात्रों और दर्शकों से होता है इसलिए कथावस्तु का वर्गीकरण भी पात्र और दर्शक की दृष्टि से भी सम्भव हो सकता है। कथावस्तु दो प्रकार की होती है – मुख्य कथा और प्रासङ्गिक कथा। मुख्य कथा को ही आधिकारिक कथावस्तु कहा जाता है। सहायक कथा प्रासङ्गिक कथावस्तु कही जाती है।

आधिकारिक कथावस्तु – प्रधानभूत कथा को 'आधिकारिक कथावस्तु' कहते हैं। नाटक के फल पर स्वामित्व प्राप्त करना अधिकार कहलाता है तथा उस फल के स्वामी को अधिकारी कहा जाता है। नाटक का फल ही अधिकार है और उस फल का भोक्ता अर्थात् नायक अधिकारी कहलाता है। अधिकार उसे कहते हैं जहाँ फल के साथ स्वस्वामिभाव सम्बन्ध हो। फल का स्वामी ही अधिकारी कहलाता है। उस अधिकार या अधिकारी के द्वारा निवृत्त या फल-प्राप्ति तक ले जाया गया इतिवृत्त ही

आधिकारिक इतिवृत्त होता है। यह नाटकादि रूपकों में मुख्य कथावस्तु होती है। यह नाटक के प्रारम्भ से चल कर अन्त तक जाती है। इसका फल भोक्ता नायक होता है।

कहने का तात्पर्य यह है नायक का फल के साथ स्वस्वामिभाव सम्बन्ध नामक अधिकार होता है और फल का वह ही स्वामी होता है। उसी कथा को फल-प्राप्ति तक ले जाने वाली कथा आधिकारिक कथा कहलाती है।

अधिकारः फलस्वाम्यमधिकारी च तत्प्रभुः।
तन्निर्वृत्तमभिव्यापि वृत्तं स्यादाधिकारिकम्।। (दशरूपक– 1/12)

प्रासङ्गिक कथावस्तु – जो कथावस्तु या इतिवृत्त दूसरे अर्थात् मुख्य कथावस्तु के लिए निर्मित होता है किन्तु प्रसङ्गवश जिसका अपना प्रयोजन भी सिद्ध हो जाता है वह प्रासङ्गिक कथावस्तु कहलाती है –

प्रासङ्गिकं परार्थस्य स्वार्थो यस्य प्रसङ्गतः।
सानुबन्धं पताकाख्यं प्रकरी च प्रदेशभाक्।। (दशरूपक– 1/13)

जो कथावस्तु दूसरे अर्थात् आधिकारिक कथावस्तु के प्रयोजन की सिद्धि के लिए होती है किन्तु प्रसङ्गवश वह अपने प्रयोजन को भी सिद्ध करती है, वह प्रासङ्गिक इतिवृत्त कहलाता है। प्रासङ्गिक कथावस्तु मुख्य कथावस्तु अर्थात् आधिकारिक कथावस्तु के फल प्राप्ति तक पहुँचाने में सहायक का कार्य करती है। प्रासङ्गिक कथावस्तु से तात्पर्य है – प्रसङ्गवश निष्पन्न होने वाली कथावस्तु, जैसे – रामायण में सुग्रीव की कथा। प्रासङ्गिक कथावस्तु दो प्रकार की होती है – पताका एवं प्रकरी।

पताका – **''सानुबन्धं पताकाख्यम्''** जो कथा रूपक में आधिकारिक कथा के समानान्तर दूर तक चलती है, वह सानुबन्ध होती है, उसे पताका कहा जाता है। इस पताका कथावस्तु का नायक भी अलग होता है जो आधिकारिक कथावस्तु का सहायक होता है। यह मुख्यनायक से गुणों में भी न्यून होता है, जैसे – रामायण में सुग्रीव की कथा में सुग्रीव।

प्रकरी – **''प्रकरी च प्रदेशभाक्''** जो कथावस्तु अल्पकाल के लिए आधिकारिक कथा के साथ चलती है वह प्रकरी कहलाती है, जैसे – रामायण में श्रवरी (शबरी) की कथा। प्रकरी कथा में नायक का कोई अपना स्वार्थ नहीं होता। अनुबन्धहीन होने से यह कथा थोड़ी दूर ही चलती है। इस प्रकार की कथा का अपना कोई प्रयोजन नहीं होता है। यह प्रमुख नायक के चरित्र की उत्कर्षता को अभिव्यक्त करती है। यह प्रधान कथा की उपकारिका है, जैसे – जटायु की कथा – यह कथा सीता के विषय में किंचित् जानकारी देती है, जिससे प्रधान कथा का उपकार हो जाता है।

इस प्रकार ये दोनों पताका और प्रकरी कथायें आधिकारिक कथावस्तु को गतिशील बनाने में अपना योगदान देतीं हैं। इस प्रकार कथावस्तु के तीन प्रकार हैं – आधिकारिक, पताका एवं प्रकरी। पुनः ये तीनों भेद – प्रख्यात, उत्पाद्य और मिश्र से तीन-तीन होते हैं –

प्रख्यातोत्पाद्यमिश्रत्वभेदात्त्रेधापि तत्त्रिधा।
प्रख्यातमितिहासादेरुत्पाद्यं कविकल्पितम्।। (दशरूपक– 1/15)

प्रख्यात – जो कथावस्तु ऐतिहासिक होती है वह प्रख्यात कहलाती है, जैसे – मुद्राराक्षस की कथावस्तु।

उत्पाद्य – जो इतिवृत्त उत्पाद्य होता है अर्थात् नाट्यकार अपनी कल्पना को ग्रहण कर रूपक की रचना करता है वह उत्पाद्य है।

मिश्र – जिसमें कुछ अंश इतिहास का और कुछ अंश कवि-कल्पना से मिश्रित हो वह कथावस्तु मिश्र कथावस्तु कहलाती है, जैसे – अभिज्ञानशाकुन्तलम्।

उपर्युक्त वर्णित कथावस्तु दिव्य, मर्त्य तथा दिव्यादिव्य भेद से अनेक प्रकार की होती हैं।

दिव्य – जिस नाटक में नायक देवता होता है वह दिव्य कथावस्तु होती है, जैसे – श्रीकृष्ण।

दिव्यादिव्य – दिव्यादिव्य में नायक देवतावतारी मनुष्य होता है, जैसे – श्रीराम।

मर्त्य – मानव रूप में जो पात्र नाटक रूप में वर्णित होता है वह मर्त्य कोटि की कथावस्तु है, जैसे – दुष्यन्तादि।

4.2.2 नायक

'नी' धातु से 'ण्वुल्' प्रत्यय के योग से नायक शब्द निष्पन्न होता है जिसका अर्थ है – नेता, प्रधान आदि। **'नयति प्रापयतीति नायक'** इस व्युत्पत्तिगत अर्थ के आधार पर 'नी' धातु का अर्थ होता है – ले जाना, ले चलना, पहुँचाना इत्यादि। इस प्रकार 'नायक' शब्द का अर्थ हुआ – जो कथावस्तु को फलप्राप्ति की ओर ले जाता है।

विभावादि द्वारा सहृदय के हृदय में अभिव्यक्त रत्यादि स्थायीभाव ही रस है। विभाव दो प्रकार के होते हैं – आलम्बन एवं उद्दीपन। आलम्बन विभाव के द्वारा ही रस का संचार होता है, जो नाटक में नायक, नायकादि के माध्यम से होता है। संस्कृत साहित्य में नायक का विवेचन भरत से लेकर विश्वनाथ आदि आचार्यों ने किया है। साहित्यदर्पण के अनुसार नायक का लक्षण इस प्रकार है –

त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवैदग्ध्यशीलवान्नेता।। (सा0 द0–3/30)

दाता (त्यागी), कृतज्ञ, पण्डित, कुलीन, लक्ष्मीवान्, लोगों के अनुराग का पात्र रूपयौवन और उत्साह से युक्त तेजस्वी चतुर और सुशील पुरुष काव्यों में नायक होता है।

दशरूपककार के अनुसार –

नेता विनीतो मधुरस्त्यागी दक्षः प्रियंवदः।
रक्तलोकः शुचिर्वाग्मी रूढवंशः स्थिरो युवा।।
बुद्ध्युत्साहस्मृतिप्रज्ञाकलामानसमन्वितः।
शूरोदृढश्च तेजस्वी शास्त्रचक्षुश्च धार्मिकः।।(दशरूपक– 2/1-2)

दशरूपककार धनंजय के अनुसार – "नाटक का नायक विनीत, मधुर, त्यागी, दक्ष, प्रियंवद, लोकप्रिय, वाग्मी, प्रख्यात, कुलीन, स्थिर एवं कलावान् होना आवश्यक है। यह बुद्धि, उत्साह, प्रजा, स्मृति इत्यादि की समृद्धि से समन्वित तथा शूर, दृढ़, तेजस्वी,

शास्त्रदृष्टिवाला एवं धार्मिक भी होता है।'' नाटक का नायक प्रख्यातवंश का राजर्षि धीरोदात्त, प्रतापी, दिव्य (कृष्णवत्) अथवा दिव्यादिव्य (रामादिवत्) होना चाहिए।

नायक के भेद-प्रभेद के सन्दर्भ में आचार्यों का दो दृष्टिकोण है – (1) काव्यशास्त्रीय दृष्टिकोण एवं (2) नाट्यशास्त्रीय दृष्टिकोण।

नाट्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से भरतमुनि ने नायक के चार प्रकार माने हैं – (1) धीरोदात्त (2) धीरोद्धत (3) धीरललित तथा (4) धीरप्रशान्त।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने भी नायक के मुख्यतया चार भेद माने हैं –

धीरोदात्तो धीरोद्धतस्तथा धीरललितश्च।
धीरप्रशान्त इत्ययमुक्तः प्रथमश्चतुर्भेदः।। (सा0 द0–3/31)

1) **धीरोदात्त नायक** – साहित्यदर्पण में आचार्य विश्वनाथ ने धीरोदात्त नायक को इस प्रकार परिभाषित किया है –

अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्त्वः।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः।। (सा0 द0–3/32)

धीरोदात्त नायक अपनी प्रशंसा स्वयं न करने वाला, क्षमावान्, अतिगम्भीर, महासत्त्व, स्थिर प्रकृति वाला, प्रच्छन्न मान वाला, सत्यप्रतिज्ञ स्वभाव वाला होता है। हर्ष एवं शोक से जिसका चित्त अभिभूत नहीं होता, विनय से प्रच्छन्न गर्व वाला, स्वीकार की हुई बात का निर्वाह करने वाला नायक 'धीरोदात्त' कहा जाता है।

धीरोदात्त नायक राजकुलोत्पन्न होता है। धीरोदात्त नायक सभी आदर्शों से युक्त होता है। राम एवं दुष्यन्त इसी कोटि के नायकों की श्रेणी में आते हैं। रचनाकार को नायक की धीरोदात्तता बनाए रखने के लिए सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक कथानक में भी कुछ परिवर्तन करना पड़ता है।

दशरूपककार के अनुसार धीरोदात्त नायक कुछ इस प्रकार का होता है –

महासत्त्वोऽतिगम्भीरः क्षमावानविकत्थनः।
स्थिरो निगूढाहंकारो धीरोदात्तो दृढव्रतः।। (दशरूपक– 2/4)

2) **धीरोद्धत नायक** – साहित्यदर्पण में आचार्य विश्वनाथ ने धीरोद्धत नायक को इस प्रकार परिभाषित किया है –

मायापरः प्रचण्डश्चपलोऽहंकारदर्पभूयिष्ठः
आत्मश्लाघानिरतो धीरैर्धीरोद्धतः कथितः।। (सा0 द0– 3/33)

मायावी, प्रचण्ड, चपल, घमण्डी, शूर, अपनी तारीफ करने वाला नायक धीरोद्धत कहा जाता है।

दशरूपककार धनंजय ने धीरोद्धत नायक को इस प्रकार परिभाषित किया है –

दर्पमात्सर्यभूयिष्ठो मायाच्छद्मपरायणः।
धीरोद्धतस्त्वहंकारी चलश्चण्डो विकत्थनः।। (दशरूपक– 2/5)

धीरोद्धत प्रकृति का नायक दर्प तथा मात्सर्य से युक्त होता है। यह माया-छल आदि में लिप्त रहता है। इस प्रकार का नायक धीरोदात्त प्रकार के नायक के स्वभाव के विपरीत होता है। यह दूसरे की समृद्धि को सहन नहीं कर पाता। इसमें प्रतिनायक के भी गुण पाए जाते हैं। वेणीसंहार का नायक भीम इसी कोटि का नायक है।

3) **धीरललित नायक** – साहित्यदर्पण में आचार्य विश्वनाथ ने धीरललित नायक को इस प्रकार परिभाषित किया है –

निश्चिन्तो मृदुरनिशं कलापरो धीरललितः स्यात्। (सा0 द0–3 / 34)

निश्चिन्त अतिकोमल स्वभाव वाला सदा नृत्यगीतादि कलाओं में प्रसक्त नायक 'धीरललित' प्रकार का नायक होता है।

धीरललित नायक राजकाज की चिन्ताओं से रहित, संगीत, नृत्य, चित्रकला आदि ललित कलाओं में आसक्त तथा रसिक वृत्ति वाला होता है। नायक प्रसिद्ध राजा होता है और प्रेम करना उसका मुख्य कार्य होता है। वह अनेक प्रेमिकाओं (नायिकाओं) से युक्त होता है तथा उसे राज्य-कर्म का भी कोई भार नहीं संभालना पड़ता है। रत्नावली का नायक उदयन धीरललित कोटि का नायक है।

धनंजय ने धीरललित नायक का लक्षण इस प्रकार बताया है –

निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः। (दशरूपक–2 / 3)

4) **धीरप्रशान्त नायक** – साहित्यदर्पण में आचार्य विश्वनाथ ने धीरप्रशान्त नायक को इस प्रकार परिभाषित किया है –

सामान्यगुणैर्भूयान् द्विजादिको धीरप्रशान्तः स्यात्। (सा0 द0–3 / 34)

त्यागादि सामान्यगुणों से युक्त ब्राह्मणादि नायक 'धीरप्रशान्त' कोटि का नायक होता है। धीरप्रशान्त नायक धीरललित नायक से धीरता के गुण के अतिरिक्त सर्वथा पृथक् होता है। यह नायक शान्तप्रकृति का ब्राह्मण या वैश्य जाति में उत्पन्न होता है। इसमें विनम्रतादि गुण अन्य नायकों की तरह ही विद्यमान रहते हैं। प्रकरण नामक रूपक का नायक धीरप्रशान्त कोटि का होता है तथापि प्रकरण का नायक निश्चिन्तता और कलाप्रियता आदि गुणों से युक्त होता है। मृच्छकटिकम् का नायक चारुदत्त धीरप्रशान्त कोटि का नायक है।

सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशान्तो द्विजादिकः। (दशरूपक– 2 / 4)

धीरोदात्तादि चारों प्रकार के नायक दक्षिण, धृष्ट, अनुकूल और शठ इन चार भेदों में विभक्त होते हैं। इस प्रकार चार भेद होने से नायक सोलह प्रकार के होते हैं –

एभिर्दक्षिणधृष्टानुकूलशठरूपिभिस्तु षोडशधा। (सा0 द0–3 / 35)

क) **दक्षिण नायक** – एक से अधिक पत्नियों में समान अनुराग रखने वाले नायक को दक्षिण नायक कहते हैं। जैसे – स्वप्नवासवदत्तम् नाटक का नायक 'उदयन'।

एषु त्वनेकमहिलासु समरागो दक्षिणः कथितः। (सा0 द0–3 / 35)

ख) धृष्ट नायक – धृष्ट नायक वह होता है जो निःशंक भाव से अपराध पर अपराध करके भी लज्जित नहीं होता, भर्त्सना करने पर प्रभावित नहीं होता और झूठ बोलकर अपने अपराध छिपाने का प्रयत्न करता है।

कृतागा अपि निःशङ्कस्तर्जितोऽपि न लज्जितः।
दृष्टदोषोऽपि मिथ्यावाक्कथितो धृष्टनायकः।। (सा0 द0–3/36)

धृष्टनायक कनिष्ठा नायिका के प्रति अनुराग में आसक्त होता है तथा इन्हीं लक्षणों से युक्त होकर ज्येष्ठा के पास रहता है। रत्नावली का नायक उदयन इसका उदाहरण है।

ग) अनुकूल नायक – जो नायक एक ही नायिका में अनुरक्त रहे उसे अनुकूल नायक कहते हैं। उत्तररामचरित के नायक राम अनुकूल कोटि के नायक हैं।

घ) शठ नायक – शठ नायक वह कहलाता है जो अनुरक्त तो किसी अन्य नायिका में होता है परन्तु अनुराग प्रकृत नायिका में दिखाता है अर्थात् इस कोटि का नायक ज्येष्ठा नायिका से छिपकर कनिष्ठा से प्रेम करता है।

उपर्युक्त सोलह (16) प्रकार के नायक उत्तम, मध्यम एवं अधम इन तीन भेदों से (48) अड़तालीस प्रकार के होते हैं –

एषां च त्रैविध्यादुत्तममध्याधमत्वेन।
उक्ता नायकभेदाश्चत्वारिंशत्तथाष्टौ च।। (सा0 द0–3/38)

4.2.3 नायिका

नायिका का सामान्य अर्थ है – नायक की प्रिया या नायक की पत्नी। नायिका भी नायक के समान गुणसम्पन्न होती है **''स्वान्या साधारणस्त्रीति तद्गुणा नायिका त्रिधा।''**(दशरूपक–2/15)। नायिका नाट्य की प्राणवाहिनी धारा है, जिसमें जीवन का मर्मस्पर्शी मधुर रस प्रवाहित होता है। नायिका की भूमिका नाटक के संविधान में विशेष होती है। नाटकों का सामान्यतया श्रृंगार रसपरक होने के कारण नायिकाओं की आकृति, प्रकृति, स्वभाव तथा चरित्र आदि के विश्लेषण में विशेष ध्यान दिया जाता है। नायिका को सुख का मूल, कामभाव का आलम्बन, त्रिभुवन के आधाररूप में विवेचित किया गया है। साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ ने नायिका के तीन भेद माने हैं –

अथ नायिका त्रिभेदा स्वान्या साधारणास्त्रीति।
नायकसामान्यगुणैर्भवति यथासंभवैर्युक्ता।। (सा0 द0–3/56)

नायिका तीन प्रकार की होती है – अपनी स्त्री, अन्य की स्त्री तथा साधारण स्त्री अर्थात् वेश्या। नायक के बताए गए सामान्य गुणों से ही युक्त नायिका भी होती है। नायिका का भी सम्बन्ध रूपक के फल से रहता है। प्रायः सभी आचार्यों ने तीन प्रकार की नायिकाओं की चर्चा की है परन्तु नाट्यदर्पण में नायिकाओं के चार प्रकार बताए गए हैं –

नायिका, कुलजा, दिव्या, क्षत्रिया, पण्यकामिनी।
अन्तिमा ललितोदात्ता, पूर्वोदात्ता त्रिधापरे।। (ना0 द0–4/172)

भरतमुनि ने नायिकाओं के चार भेद गिनाए हैं – दिव्या, नृपपतिनी, कुलस्त्री और गणिका। परन्तु ये न तो सर्वमान्य हैं और न ही प्रचलित। आचार्यों ने नायिका के

मुख्यतः तीन भेद स्वीकार किए हैं – (1) स्वकीया (2) परकीया (अन्या) और (3) साधारण स्त्री।

1) **स्वकीया नायिका** – विनय, सरलता आदि गुणों से युक्त, घर के कार्यों में निपुण, तत्पर, पतिव्रता स्त्री स्वकीया प्रकार की नायिका होती हैं। स्वकीया नायिका शील तथा सरलता आदि गुणों से युक्त होती हैं। शील का अर्थ है – सुन्दर आचरण। अतः स्वकीया नायिका पतिव्रता, कुटिलता-रहित, लल्जालू तथा पतिसेवा में निपुण होती है। साहित्यदर्पण के अनुसार –

विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया। (सा0 द0–3/57)

दशरूपककार के अनुसार –

मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीलार्जवादियुक्। (दशरूपक–2/15)

इस प्रकार की नायिका मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा भेद से तीन प्रकार की होती है।

क) **मुग्धा नायिका** – मुग्धा नायिका अवस्था तथा कामवासना में नहीं रहती, रति से वह कतराती है तथा नायक से मानादि में क्रोध करते समय भी वह कोमल स्वभाव से युक्त होती है। दशरूपककार के अनुसार –

मुग्धा नववयःकामा रतौ वामा मृदुः क्रुधि। (दशरूपक–2/16)

ख) **मध्या नायिका** – मध्या प्रकार की नायिका यौवन व कामवासना से युक्त होती है। इस प्रकार की नायिका का मान चिरस्थायी नहीं होता। वह अत्यन्त लज्जा नहीं करती। दशरूपककार के अनुसार –

मध्योद्यद्यौवनानङ्गा मोहान्तसुरतक्षमा।। (दशरूपक–2/16)

यौवन और कामादि का उदय हो रहा हो, जो मूर्च्छा की अवस्थापर्यन्त सुरत में समर्थ हो वह मध्या नायिका होती है। मध्या भी तीन प्रकार की होती है – मध्याधीरा, धीराधीरा एवं अधीरामध्या।

ग) **प्रगल्भा नायिका** – प्रगल्भा प्रकार की नायिका कामान्ध प्रकार की होती है। इस प्रकार की नायिका ढीठ तथा लज्जारहित प्रकार की होती है। वह नायक को व्यङ्ग्युक्त वचनों से बेंध देती है। नायक का अपराध होने पर वह उसे प्रेम में सहयोग नहीं देती। दशरूपककार के अनुसार –

यौवनान्धा स्मरोन्मत्ता प्रगल्भा दयिताङ्गके।
विलीयमानेवानन्दाद्रतारम्भेऽप्यचेतना।। (दशरूपक–2/18)

2) **परकीया नायिका (अन्या)** – परकीया नायिका स्वपरिणीता पत्नी नहीं होती। यह दो प्रकार की हो सकती है – एक अन्य की विवाहिता, दूसरी अविवाहिता (कन्या)। अविवाहिता नायिका पिता आदि के वशीभूत होने के कारण परकीया कही जाती है। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार –

परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढा कन्यका तथा। (सा0 द0–3/66)

किसी अन्य नायक की विवाहिता स्त्री अन्योढा (परोढा) कहलाती है। परोढा वह है जो यात्राभिलाषिणी कुलटा और लज्जाहीन होती है। कन्या पिता के अधीन रहने के कारण परकीया कही जाती है। दशरूपककार के अनुसार –

अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढाऽङ्गिरसे क्वचित्।
कन्यानुरागमिच्छातः कुर्यादङ्गाङ्गिसंश्रयम्।। (दशरूपक–2/20-21)

कन्या 'कनी दीप्तौ' से निष्पन्न है। वह नवयुवती, लल्जाशील और अविवाहित होने के कारण नायक के हृदय को दीप्त करती है। इसमें मुग्धा की चेष्टायें पायी जाती हैं। मालतीमाधव की नायिका इस कोटि की नायिका है।

3) **साधारणस्त्री (गणिका)** – तीसरी प्रकार की नायिका साधारण स्त्री है वह गणिका होती है जो कलाचतुर प्रगल्भा तथा धूर्त होती है।

धनंजय के अनुसार –

साधारणस्त्री गणिका कलाप्रागल्भ्यधौर्त्ययुक्। (दशरूपक–2/21)

आचार्य विश्वनाथ के अनुसार –

धीरा कलाप्रगल्भा स्याद्वेश्या सामान्यनायिका। (सा0 द0–3/67)

यह नृत्यगीतादि 64 कलाओं में निपुण होती है। वह निर्गुण पुरुषों से प्रेम करती है और गुणियों में अनुरक्त नहीं होती है। जो छिपकर कामतृप्ति करना चाहते हैं, जिनसे सरलतापूर्वक धन ऐंठा जा सकता है, जो मूर्ख, आजाद, घमण्डी या नपुंसक हैं, ऐसे लोगों से गणिका ठीक वैसे ही प्रेम करती है जैसे वह सचमुच में प्रेमासक्त हो परन्तु ऐसे पुरुष के धनरहित होने पर उसे धक्के मारकर निकलवा देती है। चोर, नपुंसक, मूर्ख, ब्रह्मचारीवेशधारी कामुक पुरुष इसके अनुरागी होते हैं। कभी-कभी धनहीन पुरुष में उनका अनुराग उत्पन्न हो जाता है, जैसे – मृच्छकटिकम् प्रकरण की नायिका वसन्तसेना। इस प्रकार की नायिकाओं की आठ अवस्थायें होती हैं – स्वाधीनपतिका, खण्डिता, अभिसारिकादि।

4.2.4 पूर्वरङ्ग

'पूर्वं रज्यतेऽस्मिन्' इस व्युत्पत्ति के अनुसार पूर्वरङ्ग शब्द का अर्थ होता है, ''जिसमें सामाजिकों को (दर्शकों को) पूर्व में आनन्द की प्राप्ति होती है अर्थात् जहाँ पहले ही दर्शकों को आनन्द की प्राप्ति होता है उसे पूर्वरङ्ग कहते है।''

नाट्यगृह में नाटक प्रारम्भ होने से पूर्व जो औपचारिक क्रियायें अर्थात् नान्दीपाठादि किये जाते हैं उसे पूर्वरङ्ग कहते हैं।

नाट्यशास्त्र के पंचम अध्याय में पूर्वरङ्ग का विधान किया गया है जिसके स्वरूप पर विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वरङ्ग नाट्यप्रयोग से पूर्व समय की चरमपरीक्षा स्थली है। नाट्यप्रयोग से पूर्व अनेक अनुष्ठानों का विधान किया जाता है जिसमें मुख्य रूप से गीत, वाद्य, नृत्य और पाठ्य आदि का प्रयोग जवनिका के भीतर तथा बाहर किया जाता है जिसका उद्देश्य होता है – उपस्थित सामाजिकों का अनुरंजन तथा प्रयोग परीक्षण करना।

इस प्रायोगिक विधि को पूर्वरङ्ग इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह विधि नाट्यप्रयोग विधियाँ प्रस्तुत करने के पूर्व की जाती हैं। अभिनवगुप्त ने भी माना है कि रङ्गमंच पर पूर्व प्रयोग के कारण इसका नाम पूर्वरङ्ग है। धनिक महोदय ने सामाजिकों की परिपुष्टि के कारण इसे पूर्वरङ्ग माना है।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के अनुसार पूर्वरङ्ग का प्रयोग विघ्नोपशमनार्थक होता है क्योंकि दैत्यों ने नाटक के समय उपद्रव किया था, तो उपद्रव की रक्षा के लिए रङ्गपूजा की विधि रखी गई थी –

तत्र पूर्वं पूर्वरङ्गः सभापूजा ततः परम्।

कथनं कविसंज्ञादेर्नाटकस्याऽप्यथामुखम्।। (सा0 द0–6/21)

नाट्यदर्पणकार रामचन्द्र एवं गुणचन्द्र के मतानुसार पूर्वरङ्ग का स्वरूप मङ्गलाचरणादि के कारण धार्मिक पक्ष पर बल देता है परन्तु इस पक्ष पर ज्यादा बल न दिया जाए तो यह विशुद्ध नाट्यप्रयोग है। जिस प्रकार तुरी, तन्तु, वेमादि के संयोग से ही पट का निर्माण होता है, उसी प्रकार गीत, वाद्य, पाठ्य, नृत्यादि एक-एक तत्त्वों के संयोग से ही प्रयोक्ता नाट्य को सफल रूप दे सकता है। इसी सफलता की अन्तिम कड़ी पूर्वरङ्ग है जिससे प्रेक्षक, विद्वान् आदि सन्तुष्ट होते हैं।

4.2.5 नान्दी

पूर्वरङ्ग के अनेक अङ्गों में से एक अङ्ग का नाम नान्दी है। नान्दी उसे कहते हैं, जो नाटक के प्रारम्भ में देवता, ब्राह्मण या राजाओं आदि की आर्शीवाद से युक्त स्तुति करता है।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ के अनुसार –

आशीर्वचनसंयुक्ता स्तुतिर्यस्मात्प्रयुज्यते।

देवद्विजनृपादीनां तस्मान्नान्दीति संज्ञिता।। (सा0 द0–6/24)

आदिभरत के अनुसार –

आशीर्नमस्क्रियारूपः श्लोकः काव्यार्थसूचकः नन्दीतिकथ्यते।

आर्शीवाद और नमस्कार से युक्त श्लोक नान्दी कहलाता है। उसमें काव्य के कथानक का संकेत भी होता है।

ब्राह्मण, देवता राजादिकों की आशीर्वचनयुक्त स्तुति इसमें की जाती है, अतः इसे नान्दी कहते हैं। इससे लोग आनन्दित होते हैं, अतः यह नान्दी है। इसमें मांगल्य वस्तु, शंख, चन्द्र, चक्रवाक और कुमुदादिकों का वर्णन होना चाहिए।

कहने का तात्पर्य यह है कि सभी नर्तक बिना किसी विशेष स्वरूप रचना के मिलकर जो मंगलार्थ स्तुति आदि करते हैं, वह नान्दी कही जाती है। यह नटों का अपना कार्य है और सभी नाटकों में एक समान है। किसी नाटककार को इसके लिए अपने नाटक में विशेष रचना करने की आवश्यकता नहीं होती इसलिए यह अलग से नाटक का अङ्ग नहीं होता।

नान्दी में आठ, दश या बारह पद होने चाहिए। इसमें आशीर्वाद, नमस्कार या कथावस्तु का निर्देश होना चाहिए। चतुर्थांश को पद मानने पर अभिज्ञानशाकुन्तलम् का प्रथम श्लोक चार पाठ वाली नान्दी है। यहाँ पर कथावस्तु का निर्देश है इसलिए यह पत्रावली नान्दी है।

बोध प्रश्न

1) निम्नलिखित प्रश्नों के सही विकल्प पर सही (✓) का निशान लगाइए –

i) 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटक का नायक है –

क) उदयन　　ख) चारुदत्त

ग) माधव　　घ) दुष्यन्त

ii) 'मृच्छकटिक' प्रकरण के नायक की कोटि है –

क) धीरोदात्त　　ख) धीरोद्धत

ग) धीप्रशान्त　　घ) दिव्य

iii) धीरोद्धत कोटि के नायक का लक्षण है –

क) मायावी　　ख) राजर्षि

ग) मृदु　　घ) विनीत

iv) 'रत्नावली' नाटिका के नायक की श्रेणी है –

क) धीरललित　　ख) मर्त्य

ग) धीरोदात्त　　घ) धीरोद्धत

v) 'मृच्छकटिकम्' नामक प्रकरण का नायक है –

क) दुष्यन्त　　ख) चारुदत्त

ग) उदयन　　घ) श्रीकृष्ण

vi) नाटक में 'नान्दी' का प्रयोग होता है –

क) प्रारम्भ में　　ख) मध्य में

ग) अन्त में　　घ) इनमें से कोई नहीं

vii) अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की नान्दी पदों की है–

क) एक　　ख) तीन

ग) पाँच　　घ) चार

viii) नाटक में नान्दी के प्रयोग का प्रयोजन है–

क) नाटक में बाधा आना

ख) नायक का परिचय प्रस्तुत करना

ग) नाटक की निर्विघ्न समाप्ति

घ) नाटक की समाप्ति की घोषणा

अभ्यास प्रश्न

1) निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए –

क) नायक

ख) नायिका

ग) पूर्वरंग

घ) नान्दी

4.3 सारांश

नाट्यकाव्य से तात्पर्य दृश्यकाव्य अथवा रूपक से है जो चक्षु तथा श्रवण दोनों ही इन्द्रियों का विषय होने से श्रव्यकाव्य की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली होता है। नाट्यकाव्य का तात्पर्य उस काव्य से है, जो नेत्रों के माध्यम से हमारे हृदय में प्रवेश करते हुए रस का संचार करके सहृदय दर्शकों को आह्लादित कर देता है। नट के द्वारा नायक (रामसीतादि) की अवस्थाओं का अनुकरण किए जाने के कारण रूपक को 'अभिनय' कहा जाता है। नाटक का मुख्य उद्देश्य होता है अभिनय के द्वारा सामाजिकों का मनोरंजन करते हुए रसाभिव्यक्ति करना और ''रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न तु रावणादिवत्'' का उपदेश देना।

नाटक मुख्यरूप से वस्तु, नेता एवं रस पर आश्रित होता है। प्रस्तुत इकाई में नाटक के दो प्रमुख स्तम्भों वस्तु एवं नेता पर प्रकाश डाला गया है। वस्तु या कथावस्तु मुख्यरूप से दो प्रकार की होती है – आधिकारिक अर्थात् मुख्य कथावस्तु एवं प्रासङ्गिक अर्थात् अमुख्य कथावस्तु। कथावस्तु के आधार पर ही नायक भी नाट्य में निर्धारित होते हैं। सामान्य रूप से नायक चार प्रकार के माने गए हैं एवं उन्हीं के अनुरूप नायिका भी निर्धारित है। नाटक की वस्तु रचना में कथावस्तु के रूप में दो तत्त्वों, कार्य और चरित्र का समन्वय है। कथावस्तु जहाँ एक ओर जीवन की क्रियाशीलता का रूप है तो दूसरी ओर चरित्र का विकास। इस प्रकार प्रस्तुत इकाई में आपने कथावस्तु, नायक, नायकादि के विषय में अध्ययन किया।

4.4 शब्दावली

इतिवृत्त	–	कथावस्तु
आधिकारिक कथावस्तु	–	मुख्य कथावस्तु
प्रासङ्गिग कथावस्तु	–	अमुख्य कथावस्तु
उपकारिका	–	उपकार (भला) करने वाली
अभिव्यक्त	–	प्रकट
दक्ष	–	निपुण
रक्तलोक	–	सर्वप्रिय
प्रख्यात	–	प्रसिद्ध
परोढा	–	अन्य नायक की विवाहिता स्त्री

4.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- साहित्यदर्पण– विश्वनाथ, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1957.
- नाट्यशास्त्र– भरतमुनि, गायकवाड़ ऑरियन्टल सीरीज, बड़ौदा।

- नाट्यशास्त्र–भाग 1 (अनुवाद तथा व्याख्या सहित) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1963
- भावप्रकाशन– शारदातनय, ऑरियन्टल इंस्टीट्यूट बड़ौदा, 1930
- दशरूपकम्– डॉ0 श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ–2, वि0स0– 2036, 1969 ई0

4.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

(i) (घ) दुष्यन्त (ii) (ग) धीरप्रशान्त (iii) (क) मायावी

(iv) (क) धीललित (v) (ख) चारुदत्त (vi) (क) प्रारम्भ में

(vii) (घ) चार (viii) (ग) नाटक की निर्विघ्न समाप्ति

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर छात्र स्वयं लिखें।

इकाई 5 नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द – भाग 2

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- नाटक में प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक शब्दों को जान सकेंगे।
- नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों यथा सूत्रधार, नेपथ्य, प्रस्तावना आदि का अध्ययन कर सकेंगे।
- नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में विभिन्न आचार्यों के मतों को जान सकेंगे।
- संस्कृत की पारिभाषिक शब्दावली तथा विशिष्ट प्रयोग विधि का ज्ञान प्राप्त करेंगे।

5.1 प्रस्तावना

काव्य के दो भेद हैं – दृश्य काव्य और श्रव्य काव्य। दृश्य काव्य को नाट्य अथवा रूप भी कहते हैं। दृश्य काव्य या रूपक अभिनय करने योग्य होता है। इसमें अभिनय के माध्यम से राम, कृष्ण, सीता आदि पात्रों के उदात्त चरित्र को दर्शकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

प्रिय छात्रों! इकाई 4 में आपने नायक-नायिका, पूर्वरंग तथा नान्दी का अध्ययन किया। आपने जाना कि नायक के चार भेद हैं– धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीरप्रशान्त। आप यह भी जानते हैं कि नायिका भी स्वीया, परकीया और साधारण स्त्री के भेद से तीन प्रकार की होती है। नाटक में नाटककार कुछ विशिष्ट शब्दों का प्रयोग

करता है– यथा सूत्रधार, नेपथ्य प्रस्तावना आदि। इस इकाई में आप इन्हीं पारिभाषिक शब्दों का अध्ययन करेंगे। साथ ही इन शब्दों के लिए आचार्यों ने क्या परिभाषायें दी हैं? आप उनसे भी परिचित होंगे।

5.2 नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द

प्रिय विद्यार्थियों! इकाई के इस अंश में आप नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों यथा सूत्रधार, नेपथ्य, प्रस्तावना, विदूषक आदि का अध्ययन करेंगे।

5.2.1 सूत्रधार

(सूत्रं प्रयोगानुष्ठानं धारयतीति) जो 'सूत' अर्थात् रंगमंच पर घटित होने वाली घटना को नियमित रूप से चलाता है। वह रंगमंच का अधिष्ठाता होता है। प्रस्तावना में मुख्य रूप से उपस्थित होकर नाटक का प्रारम्भ करता है तथा नाटकीय पात्रों को निर्देश देता है। ''सूत्रधारः पाठेन्नान्दीम्'' अर्थात् नान्दी पाठ सूत्रधार ही करता है।

सूत्रधार का अर्थ है सूत्र को धारण करने वाला। रंगमंच पर अभिनेय नाटक के कथासूत्र की अवतारणा करने वाला व्यक्ति ही सूत्रधार कहा जाता है। इसकी अनेक व्याख्यायें आचार्यों द्वारा प्रस्तुत की गई हैं।

नाट्य के अनुष्ठान को सूत्र कहते हैं और उस सूत्र का धारक तथा मंच के अधिष्ठित देवता का समर्थक ही सूत्रधार होता है।

नाट्यस्य यदनुष्ठानं तत् सूत्रं स्यात् सबीजकम्।
रंगदैवतपूजाकृत् सूत्रधार इति समृतः।।

अर्थात् बीज सहित नाटक के अनुष्ठान को सूत्र कहते हैं जो उसको धारण करने वाला अर्थात् संचालन करने वाला होता है तथा रंगमंच के अधिष्ठाता देवता की पूजा करता है, उसे सूत्रधार कहते हैं, जैसे अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के प्रथमाङ्क में नान्दी पाठ समाप्त होते ही सूत्रधार प्रवेश करता है–

(नान्द्यन्ते)

''सूत्रधारः – (नेपथ्याभिमुखमवलोक्य) आर्ये, यदि नेपथ्यविधानमवसितम्, इतस्तावदागम्यताम्'' आदि।

संगीतसर्वस्कार ने, कथासूत्र का आदि-प्रवर्तक होने के कारण ही व्यक्तिविशेष को सूत्रधार कहा है।

वर्तनीयतया सूत्रं प्रथमं येन सूच्यते।

रंगभूमिं समाक्रम्य सूत्रधारः स उच्यते।।

नाट्योपकरण आदि ही सूत्र है और उन्हें धारण करने वाला व्यक्ति ही सूत्रधार कहा जाता है। परिभाषा इस प्रकार–

नाट्योपकरणादीनि सूत्रमित्यमिधीयते।

सूत्रं धारयतीत्यर्थे सूत्रधारो निगद्यते।।

आचार्य मातृगुप्त के अनुसार –

चतुरातोद्यनिष्णातोऽनेकमूषासमावृतः।
नानाभाषणतत्त्वज्ञो नीतिशास्त्रार्थतत्त्ववितः।।
नाट्यप्रयोगनिपुणो नानाशिल्पकलान्वितः।
एवं गुणगणोपेतः सूत्रधारोऽभिधीयते।।

दशरूपककार के अनुसार–

पूर्वरङ्ग विधापदौ सूत्रधारे विनिर्गते।
प्रविष्य तद्वदपरः काव्यमास्थापयेन्नटः।।

अर्थात् आरम्भ में पूर्वरङ्ग का कार्य करके सूत्रधार चला जाता है फिर उसी के जैसा नट (अभिनेता) प्रविष्ट होकर काव्य की स्थापना करता है। नाट्य-मण्डप के विघ्नों की शान्ति के लिए अभिनेय वस्तु के प्रयोग से पहले जो अभिनेता लोकमङ्गल आदि करते हैं वह पूर्वरङ्ग कहलाता है। नाट्यशास्त्र (अध्याय 1/3) में इसका विस्तृत वर्णन है। गायक, वादक, नटी, नट तथा सभापति और सामाजिक सभी का मनोरंजन किया जाता है वह ''रङ्ग'' अर्थात् नाट्यशाला है। नाटक के प्रयोग से पहले वहाँ जो गीत वाद्य आदि का कार्य किया जाता है वही पूर्वरङ्ग कहलाता है। इसके प्रत्याहार आदि बारह अङ्ग होते हैं, जिसमें नान्दी तथा प्ररोचना आदि भी हैं।

सूत्रधार वह प्रमुख नट है जो रंगमंच पर किसी नाटक आदि के अभिनय का प्रबन्ध करता है (Stage Manager) – **''सूत्रं प्रयोगानुष्ठानं धारयतीति सूत्रधारः।''** स्थापक या सूत्रधार भिन्न-भिन्न व्यक्ति हैं या एक ही, यह विवाद का विषय है। दशरूपक तथा साहित्यदर्पण से तो यही प्रतीत होता है कि ये दो व्यक्ति होते थे। साहित्यदर्पण (6/26 वृत्ति) से यह भी विदित होता है कि कालान्तर में एक ही व्यक्ति दोनों के कार्य करने लगा था। अभिनवभारती (5/162) के अनुसार तो सूत्रधार पूर्वरङ्ग का कार्य करके बाहर चला जाता था और फिर वही स्थापक के रूप में प्रवेश करता था। अतः सिद्ध है कि पूर्वरङ्ग का कार्य सूत्रधार करता है।

5.2.2 नेपथ्य

अभिनेता लोग जिस स्थान पर उपयुक्त वेषभूषा धारण किया करते हैं, उसे नेपथ्य कहा जाता है–

''कुशीलवकुटुम्बकस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते''।।

जवनिका– पर्दा (curtain) के भीतर बैठे हुए पात्रों द्वारा दर्शकों को दी जाने वाली कथावस्तु की सूचना को चूलिका कहते हैं। कुछ विद्वानों ने इसी को नेपथ्य की संज्ञा दी है। नेपथ्य का शाब्दिक अर्थ है– **निनः नेत्रस्य नेपथ्यम्** अर्थात् नेत्रों के लिये पथ्यभूत, सुखदायक। मंच का पिछला भाग जहाँ अभिनेता एवं अभिनेत्रियाँ वेषभूषा धारण करते हैं– नेपथ्यगृह (Green Room) कहा जाता है जो अपनी साज-सज्जा तथा रसमयता के कारण सचमुच नेत्राकर्षक होता है। आचार्य धनञ्जय चूलिका के सन्दर्भ में लिखते हैं–

''अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना'' (दशरूपक – 1/61)

नेपथ्य पात्र के द्वारा अर्थ (कथावस्तु) की सूचना चूलिका कहलाती है। **''नेपथ्यपात्रेणार्थसूचनं चूलिका''**। 'चूलिका' शब्द की व्याख्या करते हुए नाट्यदर्पणकार कहते हैं– **''सा चूडेव चूलिका। रङ्गाभिनेयार्थस्य नेपथ्यपात्रोक्तेः शिखाकल्पत्वात्।''** अर्थात् नेपथ्य-वचन चूँकि नाटकीय कथावस्तु की शिखा के समान होता है, इसीलिए उसे 'चूलिका' या 'चूला' कहते हैं।

नेपथ्य की कुछ अन्य परिभाषायें इस प्रकार हैं–

- रङ्गाद् बहिस्तु नेपथ्यम्। – आचार्य भरत
- आकल्पवेषौ नेपथ्यं प्रतिकर्म प्रसाधनम्। – अमरकोश

नेपथ्य शब्द के तीन अर्थ हैं– वेष धारण करना, वेष धारण का स्थान तथा पर्दा।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में नेपथ्य के माध्यम से अनेकशः कथावस्तु की सूचना दी गयी है। चतुर्थ अंक में दुर्वासा को ''अनन्यमानसा'' शकुन्तला द्वारा प्रणाम न किए जाने पर दिये गए शाप की सूचना –

(नेपथ्ये)

आः, अतिथिपरिभाविनि,
विचिन्तयन्ती यमन्यमानसा तपोधनं वेत्सि न मामुपस्थितम्।
स्मरिष्यति त्वां न स बोधितोऽपि सन् कथां प्रमत्तः प्रथमं कृतामिव।।4/1।।

नेपथ्य के अन्य रमणीय उदाहरण भी अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में प्राप्त होते हैं। प्रथमाङ्क में ही महाराज दुष्यन्त को आश्रम मृग के वध से निवारित करने हेतु तीन वैखानस कहते हैं–

(नेपथ्ये)

भो भो राजन्, आश्रममृगोऽयं न हन्तव्यो न हन्तव्यः।
न खलु न खलु बाणः सन्निपात्योऽयमस्मिन्
मृदूनि मृगशरीरे पुष्पराशाविवाग्निः।
क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं
क्व च निशितनिपाता वज्रसाराः शरास्ते।।1/10।।

5.2.3 प्रस्तावना

जब सूत्रधार नटी, विदूषक अथवा पारिपार्श्विक के साथ अपने नाटकीय कथानक के निर्देश को बतलाने के निमित्त विचित्र वाक्यों के द्वारा वार्तालाप करता है तो उसे प्रस्तावना अथवा आमुख कहा जाता है।

आचार्य विश्वनाथ के मतानुसार–

नटी विदूषको वापि पारिपार्श्विक एव वा।
सूत्रधारेण सहिताः संलापं यत्र कुर्वते।।
चित्रैर्वाक्यैः स्वकार्योत्थैः प्रस्तुताक्षेपिभिर्मिथः।
आमुखं तत्तु विज्ञेयं नाम्ना प्रस्तावनाऽपि सा।। (सा0 द0–6/31-32)

अभिनेताओं के संस्कृत प्रचुर वाचिकाभिनयप्रधान भारती नाट्यवृत्ति के चार अङ्ग प्ररोचना, वीथी, प्रहसन, प्रस्तावना होते हैं। प्रस्तावना को ही आमुख कहा जाता है।

प्रस्तावना के पाँच भेद (उद्घात्यक, कथोद्घात, प्रयोगातिशय, प्रवर्तक तथा अवलगित) होते हैं जिनमें से किसी एक का ही प्रयोग रूपक विशेष में किया जाता है। नाट्यदर्पणकार आचार्य रामचन्द्र गुणचन्द ने अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में आमुख की व्याख्या की है– ''विदूषक– नटी मार्षैः व्यस्तैस्समस्तैर्वा सह सूत्रधारस्य सूत्रधारगुणानुकारस्य वा नाट्यार्थस्य, स्थापनाकर्त्तुः स्थापकस्य प्रस्तुतस्य काव्यार्थस्याक्षेपि, उपस्थापकं भाषणं वक्रोक्तैः साक्षाद् विवक्षितार्थस्याऽप्रतिपादकैः स्पष्टोक्तैः साक्षाद् विवक्षितार्थप्रतिपादकैश्च यत् स्वस्याभिप्रायोत्कीर्तनं तदामुखम्। ''आङ् मर्यादायाम्'' तेन मुखसन्धिं सम्प्राप्य निवर्तते।''

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के प्रथम अंक में नटी के गायन से प्रस्तावना समाप्त होती है –

तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः।
एष राजेव दुष्यन्तः सारंगेणातिरंहसा।।1/5।।

5.2.4 कंचुकी

कंचुकी का शाब्दिक तात्पर्य है ''कञ्चुक से युक्त व्यक्तिविशेष (''कञ्चुकमस्यातीति कञ्चुकी)''। राजदरबारों में सेवकों द्वारा पहने जाने वाले एक प्रकार के वस्तु झिंगोले को ही कंचुक कहा जाता है।

पारिभाषिक दृष्टि से अन्तःपुर में संचरण करने वाले, गुण-समूह से विभूषित तथा समस्त दायित्वों के निर्वाह में दक्ष बूढे ब्राह्मण को कंचुकी कहते हैं। वस्तुतः यह राजा की अन्तःपुर कामिनियों का संरक्षक होता है। ब्राह्मण होने के कारण सात्त्विक होना तथा वृद्ध होने के कारण कामदोष विवर्जित होना कंचुकी की दो विशेषतायें हैं –

आचार्य भरत के शब्दों में–

अन्तःपुरचरो वृद्धो विप्रो गुणगणान्वितः।
सर्वकार्यार्थकुशलः कंचुकीत्यमिधीयते।। (नाट्यशास्त्र)

मातृगुप्ताचार्य के शब्दों में–

ये नित्यसत्यसम्पन्नाः कामदोषविवर्जिताः।
ज्ञान विज्ञान कुशलाः कञ्चुकीयास्तु ते स्मृताः।।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के पंचम अंक के प्रारम्भ में ही कण्वशिष्यों के आगमन की सूचना लेकर कंचुकी राजा दुष्यन्त के पास आता है–

कञ्चुकी– अहो नु खल्वीदृशीमवस्थां प्रतिपन्नोऽस्मि।
आचार इत्यवहितेन मया गृहीता
या वेत्रयष्टिरवरोधग्रहेषु राज्ञः।
काले गते बहुतिथे मम सैव जाता
प्रस्थानविक्लवगतेरवलम्बनार्था।। 5/3।।

5.2.5 विदूषक

''विशेषेण दूषयतीति विदूषकः'' जो दूषणकला में दक्ष हो, उसे विदूषक कहते हैं। यह कथानायक का सर्वाकालिक मित्र होता है जो शारीरिक चेष्टाओं तथा बातों से हँसी उत्पन्न करता है। यह अन्तःपुर में लड़ाई लगाने वाला, मुँह देखी बातें करने वाला तथा पेटू होता है। विदूषक में विदूषण सम्बन्धी शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक क्रियाओं का सामंजस्य होता है। शरीर से वह प्रायः बौना, दंतैल, कुबड़ा, टेढ़े मुँह वाला, गंजे सिर वाला तथा पीली आँखों वाला होता है।

आचार्य भरत के अनुसार–

> **वामनो दन्तुरः कुब्जो द्विजिह्वो विकृताननः।**
> **खलति पिङ्गलाक्षश्च स विधेयो विदूषकः।।** (नाट्यशास्त्र–35 / 57)

विदूषक कथानायक का सार्वकालिक मित्र होता है। उसका प्रमुख उद्देश्य अपने कार्यों, वेषभूषाओं, शारीरिक चेष्टाओं तथा बातों से हास्य की सृष्टि करना होता है। अन्तःपुर के वातावरण में वह प्रायः कलह कराने में भी रुचि लेता है। इसी प्रकार पेटूपन, स्वार्थभाव तथा मुँहदेखी बात करना भी विदूषक की विशेषता है।

आचार्य विश्वनाथ के शब्दों में–

> **कुसुमवसन्ताद्यभिधः कर्मवपुर्वेषभाषाद्यैः।**
> **हास्यकरः कलहरतिर्विदूषकः स्यात् स्वकर्मज्ञः।।** (सा0द0 3 / 42)

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के द्वितीय अंक के प्रारम्भ में ही विदूषक (माढव्य) का चित्रण हुआ है। वह राजा दुष्यन्त की आखेटप्रियता से ऊब गया है।

''**विदूषकः – (निःश्वस्य) भो दिष्टम्। एतस्य मृगयाशीलस्य राज्ञो वयस्यभावेन निर्विण्णोऽस्मि**'' आदि।

विदूषक कुपित वधूजन के मान को भंग करने वाला भी होता है, पंचम अंक में कार्यभार से श्रान्त राजा और विदूषक के कानों में जब मधुर गीतिध्वनि पड़ती है तो राजा के मनोविनोदार्थ विदूषक कहता है – '' **कलविशुद्धाया गीतेः स्वरसंयोगः श्रूयते, जाने तत्रभवती हंसपदिका वर्णपरिचयं करोतीति**''। राजा गीत का तात्पर्यार्थ समझ कर कहता है – ''**सकृत्कृतप्रणयोऽयं जनः। तदस्या देवीं वसुमतीमन्तरेण महदुपालम्भनं गतोऽस्मि। सखे माधव्य, मद्वचनादुच्यतां हंसपदिका। निपुणमुपालब्धोऽस्मीति।**'' और यह कहकर वह विदूषक को उसे नागरिक वृत्ति समझाने के लिये भेज देता है। यह सुनकर विदूषक ''**का गतिः**'' कहकर चला जाता है। इसी प्रकार मातलि ने भी राजा में वीरभाव की जागृति के लिए विदूषक का आश्रय लिया है। अतः यह स्पष्ट है कि विदूषक न केवल मनोविनोद ही करता है, अपितु वह कथासूत्र की प्रगति में तथा नायक के स्वभाव के उत्थान में भी सहायक होता है। जैसा कि अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के पंचम और द्वितीय अंक में दिखलाया गया है।

5.2.6 अङ्कास्य

अङ्कास्य को अङ्कमुख भी कहते हैं। जब किसी अंक के अन्त में प्रविष्ट पात्रों द्वारा अग्रिम (= विच्छिन्न) असम्बद्ध अंको के अर्थ (कथानक) की सूचना दी जाये तो उसे अङ्कास्य कहते हैं। उसे Anticipatory scene भी कहा जाता है।

आचार्य धनंजय के शब्दों में–

अङ्कान्तपात्रैरङ्कास्यं छिन्नाङ्कस्यार्थसूचनात्।।(दशरूपक 1/62)

जहाँ एक अङ्क की समाप्ति के समय उस अङ्क में प्रयुक्त पात्रों के द्वारा किसी छूटे हुए अर्थ (कथावस्तु) की सूचना दी जाये वहाँ अङ्कास्य या अङ्कमुख होता है।

आचार्य भरत के अनुसार–

विश्लिष्टमुखमंकस्य स्त्रिया वा पुरुषेण वा।
यत्र संक्षिप्यते पूर्वं तदंकमुखमिष्यते ।। (ना0शा0 21/116)

भावप्रकाशनकार शारदातनय को अभिमत ''अङ्कास्य'' में कुछ भिन्नता दृष्टिगत होती है–

पूर्वाङ्कान्तप्रविष्टैर्यदुत्तरांकार्थसूचनम्।
पूर्वाङ्कार्थानुवृत्यर्थं तदङ्कास्यमुदीरितम्।।

(भावप्रकाशन सप्तमधिकार–236)

जहाँ पूर्व अङ्क की समाप्ति के समय उस अङ्क में प्रविष्ट पात्रों के द्वारा पूर्व अङ्क के कथावस्तु की अनुवृत्ति के लिए उत्तरवर्ती अङ्क के अर्थ (कथावस्तु) की सूचना दी जाये उसे अङ्कास्य कहते हैं।

शारदातनय ने ''सूत्रणं सकलाङ्कानां ज्ञेयमङ्कमुखं बुधैः'' अर्थात् समस्त अङ्कों का सूत्रण विद्वानों द्वारा अङ्कमुख कहा जाता है, कहकर अङ्कमुख को स्पष्ट किया है।

भवभूति प्रणीत महावीरचरितम् में इसका उदाहरण द्रष्टव्य है। इसमें सुमन्त्र कुछ लोगों को वशिष्ठ, विश्वामित्र तथा शतानन्द के पास चलने का आग्रह करता है। (अंक के अन्त में) और अगले अंक में वही वशिष्ठ आदि मंच पर बैठे दिखाई पड़ते हैं। इस प्रकार भावी अर्थ की सूचना पूर्वाङ्क के अन्त में ही मिल जाती है।

नाट्यदर्पण के अनुसार अङ्कास्य तथा अङ्कमुख एक ही है। भावप्रकाशन (पृ0 217–218) का लक्षण भी इसके समान ही है किन्तु वहाँ अङ्कास्य के साथ-साथ अङ्कमुख का पृथकशः वर्णन किया गया है। साहित्यदर्पण का मार्ग भिन्न है। यहाँ पंचम अर्थोपक्षेपक 'अङ्कमुख' माना गया है, जिसका लक्षण है– जहाँ एक अङ्क में अन्य अङ्कों की कथा की सूचना दी जाती है और जो बीजार्थ को प्रकट करने वाला होता है। साहित्यदर्पणकार ने दशरूपक का अङ्कास्य का लक्षण तथा उदाहरण भी दिखलाया है, किन्तु वहाँ यह भी उल्लेख कर दिया है कि उन नाट्याचार्यों के अनुसार दशरूपक का ''अङ्कास्य'' तो अङ्कावतार के अन्तर्गत ही आ जाता है। भावप्रकाशन तथा साहित्यदर्पण के अनुशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि इनसे पूर्व अङ्कास्य और अङ्कमुख दोनों का पृथक्-पृथक् लक्षण माना जाने लगा होगा।

5.2.7 स्वगत (आत्मगत)

रंगमंच पर स्थित पात्रों की दृष्टि से कथावस्तु के सुनाने या सुनने के आधार पर– अश्राव्य, सर्वश्राव्य तथा नियतश्राव्य तीन भेद किये गये हैं।

''न श्राव्यं श्रावयितुं योग्यम् इति अश्राव्यम्'' अर्थात् जो कथावस्तु (अर्थात् कथांश या संवाद) किसी भी आत्मेतर व्यक्ति को सुनाने योग्य न हो उसे अश्राव्य कहते हैं।

इस सन्दर्भ में यह तथ्य विचारणीय है कि मुख से व्यक्त होने वाली वाणी ही सुनने योग्य होती है। अतएव कोई भी बात अश्राव्य तभी होगी, जब वह मुख से अभिव्यक्त ही न की जाये। अश्राव्य-कथा में वस्तुतः ऐसा होता है क्योंकि अश्राव्य संवाद विचार अथवा चिन्तन के रूप में मन में ही स्फुरित होकर विनष्ट हो जाता है, फलतः सम्बद्ध पात्र को ही उसकी अनुभूति होती है। मुँह से अभिव्यक्त ना होने के कारण उसके सुने जाने का प्रश्न ही नहीं उठता इसीलिए प्राचीन नाट्याचार्यों ने अश्राव्य को ''स्वगत अथवा आत्मगत'' की संज्ञा दी है, जिसका तात्पर्य है– ''स्वस्मिन् आत्मनि मनसि एव गतं स्थितम्'' अर्थात् जो मन ही में नियंत्रित हो, व्यक्त न हो।

साहित्यदर्पणकार के अनुसार –

''अश्राव्यं खलु यदवस्तु तदहि स्वगतं मतम्'' (सा0द0 6/137)

जो बात रंगमंच पर स्थित अन्य अभिनेताओं को सुनाने योग्य नहीं होती उसे अश्राव्य या स्वगत (आत्मगत) कहते हैं। इसका उद्देश्य है– रंगमंच पर स्थित साथ के अभिनेता उस बात को न सुन सकें, केवल श्रोता ही सुन सकें। स्वगत का उदाहरण शाकुन्तलम् के तृतीय अंक में मिलता है –

शकुन्तला – (आत्मगतम्) बलवान् खलु मेऽभिनिवेशः। इदानीमपि सहसैतयोर्नऽशक्नोमि निवेदयितुम्।

आचार्य धनंजय ने इसी दृष्टि से परिभाषा दी है–

''अश्राव्यं स्वगतं मतम्।''

स्वगत का उदाहरण शाकुन्तलम् के प्रथमाङ्क में भी मिलता है –

शकुन्तला– (स्वगतम्) किं नु खल्विमं प्रेक्ष्य तपोवनविरोधिनो विकारस्य गमनीयास्मि संवृत्ता।

इस प्रकार लोकवृत्त का अनुकरण करने के लिए ही अभिनय में इन उक्तियों का प्रयोग किया जाता है। ये नाट्य के धर्म-स्वभाव हैं। इनके प्रयोग से नाट्य में स्वाभाविकता रहती है।

5.2.8 प्रकाश

''सर्वेभ्यः मञ्चस्थितेभ्यः पात्रेभ्यः श्राव्यं श्रावणीयम् इति सर्वश्राव्यम्'' अर्थात् मंच पर विद्यमान समस्त पात्रों को सुनाने योग्य जो कथावस्तु (संवाद) हो उसे सर्वश्राव्य कहते हैं। इसी को ''प्रकाश'' भी कहते हैं।

साहित्यदर्पणकार के अनुसार –

सर्वश्राव्यं प्रकाशं स्यात् (सा0द0 6/138)

जो बात (कथा) सबको सुनाने योग्य हो उसे प्रकाश या सर्वश्राव्य कहते हैं। नाटकों में ''प्रकाश'' इस रंगमंचीय निर्देश का प्रयोग स्वगत के संवाद के पश्चात् किया जाता है। वैसे तो जहाँ पर किसी प्रकार का रंगमंचीय निर्देश नहीं होता वह संवाद भी सर्वश्राव्य होता है।

साहित्यदर्पण में नाट्यधर्म के स्थान पर नाट्योक्ति शब्द का प्रयोग किया गया है। वस्तुतः ऐसा प्रतीत होता है अवस्थानुकृति ही नाट्य है। इसमें लोकवृत्त का अनुकरण

किया जाता है। लोक में सभी बातें एक रूप से नहीं कही जातीं किन्तु नाट्य में इनकी गोपनीयता केवल अभिनय करने वाले पात्रों की अपेक्षा से होती है। सामाजिकों को तो ये सब बातें सुनानी होती हैं। यदि सामाजिक इन बातों को न सुन सकेगा तो कथाप्रवाह में बाधा पड़ेगी और भली-भाँति रसास्वादन न किया जा सकेगा। इस प्रकार लोकवृत्त का अनुकरण करने के लिए ही अभिनय में इन विविध उक्तियों का प्रयोग किया जाता है। ये नाट्य के धर्म-स्वाभाव हैं। इनके प्रयोग से नाट्य में स्वाभाविकता रहती है।

बोध प्रश्न

1) नीचे दिए गए कथनों में से सत्य (✓) तथा असत्य (×) कथन का चयन कीजिए–

(i) रंगमंच का अधिष्ठाता सूत्रधार होता है– ( )

(ii) अभिनेता जिस स्थान पर वेषभूषा धारण करते हैं वह नेपथ्य कहलाता है– ( )

(iii) प्रस्तावना को ही अश्राव्य कहते हैं– ( )

(iv) अन्तःपुर में संचरण करने वाला वृद्ध ब्राह्मण सूत्रधार होता है– ( )

(v) विदूषक कथानायक का सार्वकालिक मित्र होता है– ( )

2) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए–

(i) पूर्वरंग का कार्य करके....... चला जाता है।

(ii) नेपथ्य पात्र के द्वारा कथावस्तु की सूचना .... कहलाती है।

(iii) प्रस्तावना के .... भेद होते हैं।

(iv) जो दूषण कला में दक्ष हो, उसे .... कहते हैं।

(v) जो बात सबको सुनाने योग्य हो, उसे .... कहते हैं।

3) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

(i) आचार्य धनंजय के अनुसार चूलिका की परिभाषा लिखिए।

....

....

(ii) प्रस्तावना के कितने भेद हैं? लिखिए।

....

....

(iii) आचार्य विश्वनाथ के अनुसार स्वगत की परिभाषा लिखिए।

....

....

अभ्यास प्रश्न

1) निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए–

क) प्रस्तावना

ख) विदूषक

ग) कंचुकी

घ) स्वगत

5.3 सारांश

प्रिय छात्रों! 'संस्कृत नाटक' पाठ्यक्रम की यह इकाई नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों पर आधारित है। इस इकाई में आपने सूत्रधार, नेपथ्य, प्रस्तावना, कंचुकी विदूषक, अंकास्य, स्वगत और प्रकाश के विषय में अध्ययन किया। आपने इस इकाई के माध्यम से यह जाना कि जो रंगमंच पर घटित होने वाली घटना को नियमित रूप से चलाता है, रंगमंच का अधिष्ठाता होता है, नाटकीय पात्रों को निर्देश देता है, वह सूत्रधार कहलाता है। नेपथ्य वह स्थान है जहाँ नट अपनी उपयुक्त वेषभूषा धारण करते हैं। नेपथ्य को चूलिका भी कहते हैं। नाटकीय कथानक के निर्देश को बताने के उद्देश्य से जो वार्तालाप किया जाता है वह आमुख या प्रस्तावना कहलाता है। अन्तःपुर में विचरण करने वाला तथा समस्त गुण समूहों से युक्त वृद्ध बाह्मण कंचुकी कहलाता है। दूषण कला में दक्ष, कथानायक का सार्वकालिक मित्र विदूषक कहलाता है।

इस इकाई में आपने यह भी जाना कि एक अंक की समाप्ति के पश्चात् उस अंक में प्रयुक्त पात्रों के द्वारा छूटे हुए कथानक की सूचना अंकास्य या अंकमुख कहलाती है। जो कथांश आत्मेतर व्यक्ति को सुनाने योग्य न हो वह आश्राव्य कहलाता है तथा मंच पर उपस्थित समस्त पात्रों को सुनाने योग्य संवाद सर्वश्राव्य कहलाता है। इस इकाई में इन सभी पारिभाषिक शब्दों को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न आचार्यों यथा विश्वनाथ, धनंजय, शारदातनय आदि के ग्रन्थों से परिभाषायें उद्धृत की गई हैं तथा उनको स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

5.4 शब्दावली

नाटकीय – नाटक सम्बन्धी

अधिष्ठित – स्थित, विद्यमान

अनुष्ठान – विधि

अभिनेय – अभिनय करने योग्य

वृत्तान्त – कथन

दक्ष – निपुण

वाचिक – वचन सम्बन्धी

प्रविष्ट – अन्दर गया

अभिव्यक्त – कथित

5.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

- साहित्यदर्पण– विश्वनाथ, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1957.
- नाट्यशास्त्र– भरतमुनि, गायकवाड़ ऑरियन्टल सीरीज, बड़ौदा।
- नाट्यशास्त्र–भाग 1 (अनुवाद तथा व्याख्या सहित) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1963
- भावप्रकाशन– शारदातनय, ऑरियन्टल इंस्टीट्यूट बड़ौदा, 1930
- नाट्यदर्पण– रामचन्द्र गुणचन्द्र (हिन्दी व्याख्या) दिल्ली विश्वविद्यालय, 1961
- अभिज्ञानशाकुन्तलम्– डॉ0 बाबूराम त्रिपाठी, रतन प्रकाशन मंदिर, पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता, 1/11 साहित्य कुंज, महात्मा गांधी मार्ग, आगरा–2, संस्करण 1984
- दशरूपकम्– डॉ0 श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार मेरठ–2, वि0स0– 2036, 1969 ई0

5.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) i) सत्य (ii) सत्य (iii) असत्य (iv) असत्य (v) सत्य

2) i) सूत्रधार (ii) चूलिका (iii) पांच (iv) विदूषक (v) सर्वश्राव्य

3) i) आचार्य धनंजय के अनुसार चूलिका की परिभाषा इस प्रकार है 'अन्तर्जवनिकासंस्थैश्चूलिकार्थस्य सूचना।'

   (ii) प्रस्तावना के पाँच भेद हैं (क) उद्धात्यक (ख) कथोद्धात (ग) प्रयोगातिशय (घ) प्रवर्तक (ङ) अवलगित।

   (iii) आचार्य विश्वनाथ के अनुसार स्वगत की परिभाषा इस प्रकार है 'अश्राव्यं खलु यदवस्तु तदहि स्वगतं मतम्।'

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

इकाई 6 नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द – भाग 3

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- नाट्य प्रकृति के स्वरूप और विकास को समझ सकेंगे।
- नाट्य कौशल का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- नाट्यशास्त्र की समृद्ध परम्परा का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- अपवारित, विष्कम्भक, आकाशभाषित आदि नाट्यशास्त्रीय शब्दों से परिचित होंगे।

6.1 प्रस्तावना

नाट्यशास्त्र भारतीय वाङ्मय का महत्त्वपूर्ण अंग है। इसमें रस, भाव तथा अभिनय के साथ-साथ नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों का विस्तृत विवेचन किया गया है। नाट्यशास्त्र के उपरान्त अनेक आचार्यों ने इन पारिभाषिक शब्दों का बहुत सुन्दर एवं गम्भीर विवेचन किया है यथा विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण में, धनंजय ने दशरूपक में, शारदातनय ने भावप्रकाश में आदि।

इस इकाई से पूर्व की इकाई चार एवं पाँच में आपने नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द भाग 1 एवं भाग 2 में इतिवृत्त, नायक, नायिका, पूर्वरंग, सूत्रधार, नेपथ्य, प्रस्तावना आदि के विषय में विस्तृत अध्ययन किया। यह नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों से सम्बद्ध तीसरी इकाई है। इस इकाई में आप अपवारित, आकाशभाषित, जनान्तिक विष्कम्भक आदि का लक्षण तथा उदाहरण द्वारा विस्तृत अध्ययन करेंगे तथा नाटक में इनकी प्रासंगिकता एवं उपादेयता को भी समझेंगे।

6.2 नाट्यशास्त्रीय पारिभाषिक शब्द

6.2.1 अपवारित

नाट्योक्ति के प्रसंग में अपवारित की चर्चा हुई है। 'अपवारित' उस वचन को कहते हैं जिसे किसी के प्रति गोपनीय समझकर उससे अन्यत्र हटकर, दूसरे पर प्रकाशित किया जाया करता है अर्थात् गोपनीय रखकर किसी अन्य को प्रकाशित करना अपवारित कहलाता है। अभिनय के सन्दर्भ में पात्र इसका प्रयोग करते हैं।

नाट्यशास्त्र में नाटकीय-वृत्त के चार मुख्य प्रकारों का निर्देश किया गया है। यथा-सूच्य, प्रयोज्य, अभ्यूह्य तथा उपेक्ष्य। इन चार मुख्य वृत्त-प्रकारों के अतिरिक्त अपवारित भी रूपक-प्रबन्धों का भेद ही है।

कविराज विश्वनाथ साहित्यदर्पण में अपवारित का लक्षण इस प्रकार करते हैं –

''रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते, तदभवेदपवारितम्''।

अर्थात् दूसरे द्वारा सुनने लायक रहस्य को उससे हटाकर किसी अन्य से कहना अपवारित कहलाता है।

नाट्यशास्त्र में आचार्य भरतमुनि कहते हैं –

''परावृत्तय अङ्वलनेनऽश्रावयितव्येभ्यः पराङ्मुखीभूयाऽन्यस्मै रहस्याख्या वा तदपवार्यत बहूनां प्रयच्छत इत्यपवारितम्''।

अर्थात् ''अपवारित'' वह वृत्त प्रकार है जिसे किसी के लिए गोपनीय रखकर वर्णित किया जाता है।

अन्य व्यक्तियों की ओर मुँह फेरकर किसी पात्र विशेष के प्रति जो किसी गुप्त रहस्य का प्रकाशन किया जाता है उसे अपवारित कहते हैं।

नाट्यदर्पण में आचार्य रामचन्द्र-गुणचन्द्र कहते है –

''रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्य प्रकाश्यते''।

अर्थात् जो बात पात्र विशेष से छिपाकर अन्य पात्रों से कही जाती है उसे अपवारित कहते हैं।

''परावृत्त्यान्यस्य रहस्यकथनमपवारितम्''।

6.2.2 जनान्तिक

नाट्योक्ति के सन्दर्भ में जनान्तिक की चर्चा हुई है। जनान्तिक कई एक पात्रों के परस्पर वार्तालाप के प्रसंग में, दो पात्रों के बीच होने वाली वह बातचीत है जिसे वे ''त्रिपताक'' नामक हस्त-मुद्रा द्वारा इसलिये किया करते हैं, जिससे और कोई उसे सुनने उनके पास न आए। साहित्यदर्पण में इसका लक्षण इस प्रकार कहा गया है –

''त्रिपताकरेणान्यानानपवार्यान्तरा कथाम्।
अन्योन्यामन्त्रणं यत्स्यात्तज्जनान्ते जनान्तिकम्।।''

जब कोई पात्र किसी पात्र के प्रति कोई बात गोपनीय रखना चाहता है तब वह ऐसी हस्त-मुद्रा बनाया करता है जिसमें सब अंगुलियाँ ऊपर उठी रहें तथा अनामिका अँगुलि

झुकी रहे। इस प्रकार त्रिपताक-मुद्रा द्वारा एक को सुनने से मना करके, दूसरे को सुनायी गयी बात जनान्तिक कही जाती है।

यः कश्चिदर्थो यस्माद्गोपनीयस्तस्यान्तरत अर्ध्वं सर्वाङ्गुलिनामितानामिकं त्रिपताकलक्षणं करं कृत्वान्येन सह यन्मन्त्र्यते तज्जनान्तिकम्।

वस्तुतः यह एक नाटकीय पारिभाषिक शब्द है, जो नियत व्यक्तियों को ही सुनाने के लिए प्रयुक्त होता है। इसका प्रयोग वहाँ होता है जहाँ पर काई पात्र रंगमच पर स्थित अन्य पात्रों से किसी बात को छिपाने के लिए एक ओर होकर किसी पात्र से शनैः-शनैः बात करता है।

उदाहरण– अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथम अंक में शकुन्तला की सखी प्रियवंदा जनान्तिक (हाथ की आड़कर) के द्वारा केवल अनसूया से कहती है ''अनसूये! को नु खल्वेष चतुरगम्भीराकृतिर्मधुरं प्रियमालपन् प्रभाववानिव लक्ष्यते''। सखि अनसूये! यह कौन व्यक्ति है जो देखने में गम्भीर आकृति वाला मालूम पड़ता है। इसके मधुर भाषण से यह अत्यन्त प्रभावशील प्रतीत हो रहा है। इसमें राजा दुष्यन्त के शिष्ट व्यवहार तथा प्रभावशाली व्यक्तित्त्व का इतना प्रभाव पड़ा कि प्रियंवदा हाथ की आड़ में मुख छिपाकर अनसूया से बातचीत करती हुई उनकी प्रशंसा कर रही है।

6.2.3 आकाशभाषित

यह भी एक नाट्योक्ति ही है। यह एक पात्र का ही प्रश्न-प्रतिवचन रूप है।

नाट्यशास्त्र में आचार्य भरत कहते हैं –

''क्वचित् स्वोत्तरार्थमनुभाषणच्छायया परकीयः प्रश्नः क्वचित् स्वप्रश्नस्यानु''

अर्थात् कहीं अपने उत्तर के लिए दूसरा प्रश्न तथा कहीं अपने प्रश्न के लिए दूसरा उत्तर।

वस्तुतः आकाशभाषित वह बातचीत है जो बिना किसी और पात्र की उपस्थिति के ''क्यों भाई क्या कहा''? आदि कह सुनकर, एक ही पात्र के द्वारा, कही सुनी जाया करती है।

साहित्यदर्पण में इसकी परिभाषा इस प्रकार है –

किं ब्रवीषीति नाट्ये विना पात्रं प्रयुज्यते।
श्रुत्वेवानुक्तमप्यर्थं तत्स्यादाकाशभाषितम्।।

उदाहरण– अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के तृतीय अङ्क के प्रारम्भ में ही कण्व-आश्रम में रहने वाले एक शिष्य के द्वारा राजा दुष्यन्त के प्रभावातिशय वर्णन प्रसङ्ग में प्रियंवदा से बातचीत के प्रसङ्ग में आकाशभाषित का यह उदाहरण है–

''**प्रियंवदे कस्येदमुषीरानुलेपनं मृणालवन्ति च नलिनीपत्राणि नीयन्ते**''। अरी प्रियंवदे! यह खश का अनुलेपन तथा मृणालतन्तु से युक्त कमलिनी के पत्ते किसके लिए ले जा रही हो?

इसके बाद वही शिष्य आकाशभाषित का प्रयोग इस प्रकार करता है – **''आकर्ण्य, किं ब्रवीषि। आतपलङ्घनाद्बलवदस्वस्था शकुन्तला तस्याः शरीरनिर्वापणयेति''।**

आकाशभषित का प्रयोग कर – क्या कह रही? धूप में चलने से शकुन्तला अत्यधिक अस्वस्थ हो गई है, उसके शरीर की अग्नि अथवा ताप दूर करने के लिए ही ये ले जा रही हो।

यहाँ ''किं ब्रवीषि'' इस पद के द्वारा शिष्य के कथन में आकाशभाषित का सुन्दर प्रयोग हुआ है। यहाँ प्रियंवदा भी उपस्थित नहीं है, वह शिष्य उसके बिना ही आकाश में ही बोल रहा है तथा उसके बाद बिना सुने हुए भी सुनने का अभिनय कर रहा है।

6.2.4 विष्कम्भक

अर्थोपक्षेपक के भेद के रूप में विष्कम्भक भी प्रमुख है। अर्थोपक्षेपक अर्थात् ''अर्थो नाम इतिवृत्तम्, उपक्षेपको नाम प्रत्यायकम्, इतिवृत्त का उपक्षेपक अथवा प्रत्यायक।

वस्तुतः सरस इतिवृत्त का निबन्धन तो अङ्क में हुआ करता है किन्तु नीरस और इसीलिए अनिबन्धनीय इतिवृत्त-प्रकार की भी योजना पूर्वापरवृत्त – सम्बन्ध की दृष्टि से अपेक्षित ही हुआ करती है। अनिबन्धनीय इतिवृत्त की सूचना के जो उपाय हैं, उन्हें अर्थोपक्षेपक कहा गया है। जो भूत और भावी कथा भागों की सूचना प्रदान करता है और अङ्क की अपेक्षा कम विस्तार रखता है तथा जिसकी योजना अङ्क के आरम्भ में ही हो जाती है, वह विष्कम्भक कहलाता है।

साहित्यदर्पण के अनुसार इसका लक्षण इस प्रकार है –

वृत्तवर्तिष्यमाणानां कथांशानां निदर्शकः।
संक्षिप्तार्थस्तु विष्कम्भ आदावङ्कस्य दर्शितः।।

विष्कम्भक शब्द की व्युत्पत्ति है – **''विष्कभ्नाति अनुसन्धानेन वृत्तमुपष्टम्भयतीति विष्कम्भकः''।**

रूपक-प्रबन्धों में कतिपय ऐसे भी कथाभाग उपनिबद्ध किये जाते हैं जो अरञ्जक होने के कारण या रञ्जक होने पर भी एक दिन में अभिनय के लिये असंभावनीय होने के कारण अङ्क में अनिबन्धनीय हुआ करते हैं। ऐसे कथा भागों की योजना आगे के अङ्क में इतिवृत्त के उपयोगी होने के नाते ''विष्कम्भक'' द्वारा की जाया करती है।

यह विष्कम्भक दो प्रकार का होता है :

(1) शुद्ध विष्कम्भक (2) सङ्कीर्ण विष्कम्भक

शुद्ध विष्कम्भक– जिसमें एक या दो पात्र मध्यम श्रेणी के हों और वे संस्कृत भाषा का प्रयोग करते हों, वह शुद्ध विष्कम्भक कहलाता है।

साहित्यदर्पण में इसका लक्षण इस प्रकार है –

''मध्येन मध्यमाभ्यां वा पात्राभ्यां संप्रयोजितः शुद्धः''।

उदाहरण – मालतीमाधव नामक नाटक के तृतीय अङ्क में श्मशान में उपस्थित कपालकुण्डला भूत और भावी वृत्तान्तों की सूचना संस्कृत भाषा में देती है।

''ततः प्रविशति आकाशयानेन भीषणोज्ज्वलवेषा कपालकुण्डला (परिक्रम्याऽवलोक्य च गन्धमाघ्राय) इदं तावत्पुराणनिम्बतैलाक्तपरिभृज्यमान

रसोनगन्धिभिधिताधूमैः पुरस्ताद्विभावितस्य महतः श्मशानवटस्य नेदीयः करालायतनम् (परिक्रम्य निष्क्रान्ता)'' यहाँ कपालकुण्डला नाटक की मध्यम पात्र है अतः यह शुद्ध विष्कम्भक का उदाहरण है।

सङ्कीर्ण विष्कम्भक – जिसमें एक पात्र मध्यम श्रेणी का हो तथा दूसरा निम्न श्रेणी का। इसमें प्राकृत तथा संस्कृत दोनों भाषाओं का प्रयोग होता है। ''स तु संकीर्णो नीचमध्यमकल्पितः''।

उदाहरण – रामाभिनन्द नामक नाटक में क्षपणक और कापालिक का परस्पर संवाद-वर्णन। यहाँ क्षपणक मध्यम श्रेणी का तथा कापालिक निम्न श्रेणी का पात्र है। क्षपणक की भाषा संस्कृत तथा कापालिक की भाषा प्राकृत है। अतः यह सङ्कीर्ण विष्कम्भक का उदाहरण है।

6.2.5 प्रवेशक

अर्थोपक्षेपक में यह द्वितीय अर्थोपक्षेपक है। विष्कम्भक की ही तरह यह भी भूत और भावी कथा का सूचक होता है। इसकी योजना दो अङ्कों के मध्य की जाती है। इसमें अधम पात्र के द्वारा संस्कृत-भिन्न प्राकृत का प्रयोग किया जाता है। इसको 'प्रवेशक' इसलिए कहा जाता है कि इसका कार्य सामाजिक-हृदय में अप्रत्यक्ष अर्थ का प्रवेश कराना हुआ करता है। ''अप्रत्यक्षान् अर्थान् सामाजिकहृदये प्रवेशयतीति प्रवेशकः''।

साहित्यदर्पण के अनुसार इसका लक्षण निम्नलिखित है –

''प्रवेशकोऽनुदात्तोक्त्या नीचपात्रप्रयोजितः।
अङ्कद्वयान्तर्विज्ञेयः शेषं विष्कम्भके यथा।।''

दो अङ्कों के बीच में 'प्रवेशक' की योजना का यह तात्पर्य है कि पहले अङ्क में इसकी योजना निषिद्ध है।

प्रवेशक और विष्कम्भक में थोड़ा सा अन्तर है। वस्तुतः यह अन्तर भाषा का है, प्रवेशक की भाषा प्राकृत हुआ करती है जबकि विष्कम्भक की भाषा संस्कृत अथवा संस्कृत-प्राकृत।

उदाहरण – वेणीसंहार नाटक के तृतीय अङ्क में राक्षस और राक्षसी के द्वारा प्राकृत-भाषा में सिन्धुराज के वध की तथा दुःशासन के वध की सूचना देना।

6.2.6 भरतवाक्य

नाटकों में अन्तिम वाक्य को भरतवाक्य कहा जाता है। यह वाक्य पद्य रूप में निबद्ध होते हैं। इनमें मङ्गल की कामना की जाती है। भरतवाक्य से तात्पर्य यहाँ आचार्य भरत के द्वारा कहा गया वाक्य अथवा भरत (नट) के द्वारा कहा गया वाक्य है।

वस्तुतः इसमें राष्ट्र की गौरवपूर्ण सर्वविध समृद्धि के निमित्त किसी नाटकीय पात्र द्वारा सामाजिकों की शुभाशंसा की जाती है। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि के प्रति सम्मान प्रदर्शन करने के लिए ही इस अन्तिम पद्य को भरतवाक्य कहा जाता है अथवा नाटक के किसी नट-विशेष भरत की उक्ति होने के कारण इसे भरतवाक्य कहा जाता है।

भरतवाक्य भी एक तरह का मङ्गलाचरण ही है, नाटक के प्रारम्भ में नान्दी तथा अन्त में भरतवाक्य मंगल के रूप में प्रयुक्त होता है।

आचार्य भरत ने इसका लक्षण इस प्रकार दिया है –

''नाट्यन्ते नायकप्रोक्तं प्रजामङ्गलसूचकम्।
भरतानां प्रियत्वाच्च तद्वाक्यमभिधीयते।।''

अर्थात् नाटक के अन्त में नायक के द्वारा प्रजा के मङ्गल के लिए कहा जाने वाला वाक्य भरतवाक्य कहलाता है।

उदाहरण – अभिज्ञानशाकुन्तलम् का भरतवाक्य।

''प्रवर्ततां प्रकृतिहिताय पार्थिवः
सरस्वती श्रुतमहतां महीयताम्।
ममापि च क्षपयतु नीललोहितः
पुनर्भवं परिगतशक्तिरात्मभूः''।।

अर्थात् राजा गण प्रजा के हित के कार्यों में हमेशा लगे रहें, चारों वेदों में गीयमान कीर्ति भगवती सरस्वती जगत् में पूजा को प्राप्त हों, या वैदिक वाङ्मय में प्रशंसित महान् कवियों की वाणी गौरव मण्डित हो, सर्वशक्तिमान् स्वयम्भू भगवान् सदाशिव मेरे पुनर्जन्म को समाप्त करें, अर्थात् भगवान् शङ्कर की कृपा से मेरा जन्म-मरण रूप भवबन्धन हमेशा के लिए छूट जाये।

इस भक्तवाक्य में प्रजा के मङ्गल के लिए कथन किया गया है। यह उक्ति नाटक के नायक राजा दुष्यन्त के द्वारा की गई है।

बोध प्रश्न

1) **निम्नलिखित विकल्पों में सही ☑ विकल्प का चयन कीजिए –**

   i) 'त्रिपताक' नामक हस्तमुद्रा का प्रयोग होता है – जनान्तिक में/अपवारित में।

   ii) एक पात्र का ही प्रश्न प्रतिवचन रूप होता है – विष्कम्भक/आकाशभाषित

   iii) विष्कम्भक प्रकार का होता है – दो/चार

   iv) प्रवेशक की योजना की जाती है – दो अंकों के मध्य में/नाटक के प्रारम्भ में

   v) नाटकों में अन्तिम वाक्य कहलाता है – नान्दी/भरतवाक्य

2) आचार्य विश्वनाथ के अनुसार अपवारित का लक्षण लिखिए।

3) विष्कम्भक के कितने भेद हैं?

4) प्रवेशक की भाषा कैसी होती है?

अभ्यास प्रश्न

1) **निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए :**

   (क) अपवारित (ख) जनान्तिक

   (ग) विष्कम्भक (घ) भरतवाक्य

6.3 सारांश

प्रस्तुत इकाई में आपने नाट्योक्ति के सन्दर्भ में अपवारित नामक रूपक के वृत्त-भेद को समझा, इसी में ही विशेष रूप से नाट्यदर्पण की परिभाषा को समझाया गया। जैसे –

''रहस्यं कथ्यतेऽन्यस्य परावृत्य प्रकाशते'' अर्थात् जो बात पात्र विशेष से छिपाकर अन्य पात्रों से कही जाती है उसे अपवारित कहते हैं।

इसके उपरान्त 'जनान्तिक' की चर्चा हुई। जनान्तिक के प्रसङ्ग में त्रिपताक द्वारा हस्त-मुद्रा का प्रयोग करते हुए जनान्तिक का स्वरूप बताया गया। त्रिपताक वस्तुतः एक हस्त-मुद्रा है, इसमें हाथ की सभी अंगुलियाँ ऊपर उठी रहती हैं तथा अनामिका झुकी रहती है। इस प्रकार त्रिपताक-मुद्रा द्वारा, एक को सुनने से मना करके, दूसरे को सुनायी गयी बात ''जनान्तिक'' कहलाती है

जनान्तिक के बाद आपने एक अन्य नाट्योक्ति ''आकाशभाषित'' को सोदाहरण समझा। वस्तुतः आकाशभाषित वह वार्ता है जो बिना किसी अन्य पात्र की उपस्थिति में ''क्या कहा'' आदि कह-सुनकर एक ही पात्र के द्वारा कही सुनी जाती है।

उदाहरण के रूप में आपने शिष्य के कथन के द्वारा ''क्या कह रही हो''? धूप में चलने से शकुन्तला अत्यधिक अस्वस्थ हो गई है, उसके शरीर के ताप को शान्त करने के लिए ये ले जा रही हो। इस कथन में बहुत ही सुन्दर रूप में आकाशभाषित का प्रयोग महाकवि कालिदास ने अपने सुप्रसिद्ध नाटक ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' में किया है।

इसी क्रम में आपने पाँच प्रकार के अर्थोपक्षेपक के भेद के रूप में विष्कम्भक नामक प्रथम भेद को विस्तार-पूर्वक समझा।

विष्कम्भक शब्द की व्युत्पत्ति के साथ-साथ इसके दो भेदों को भी आपने लक्षणोदाहरण सहित पढ़ा तथा समझा।

वस्तुतः विष्कम्भक नाटक का महत्त्वपूर्ण विषय है, इसमें भूत और भावी कथा भागों की सूचना होती है। मालतीमाधव नाटक के तृतीय-अङ्क में वर्णित श्मशान में स्थित कपलकुण्डला नाटक में होने वाली भावी कथाओं की सूचना देती है। यह शुद्ध विष्कम्भक का उदाहरण है क्योंकि कपलकुण्डला मध्यम पात्र है तथा संस्कृत भाषा में बोलती है। वहीं दूसरी तरफ सङ्कीर्ण विष्कम्भक के उदाहरण के रूप में क्षपणक और कापालिक का परस्पर संवाह वर्णन भी आपने सविस्तार पढ़ा।

इसके बाद अर्थोपक्षेपक के द्वितीय भेद प्रवेशक के बारे में आपने अध्ययन किया। यह भी विष्कम्भक की तरह भूत और भावी कथा का सूचक होता है। इसमें संस्कृत भिन्न प्राकृत का प्रयोग किया जाता है। वस्तुतः प्रवेशक और विष्कम्भक में मामुली सा अन्तर होता है। भाषा को केन्द्र मानकर यह अन्तर किया गया है, प्रवेशक की भाषा प्राकृत होती है जबकि विष्कम्भक की भाषा संस्कृत अथवा संस्कृत-प्राकृत।

इसके पश्चात् आपने नाटक के महत्त्वपूर्ण अङ्ग भरतवाक्य के बारे में गम्भीरता से जाना। यह भरतवाक्य भी मङ्गलाचरण का ही एक विशेष रूप है इसमें भी प्रजा के कल्याण के लिए ईश्वर से प्रार्थना की जाती है। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि के प्रति सम्मान प्रदर्शनार्थ ही इस अन्तिम पद्य को भरतवाक्य कहा जाता है, अथवा नाटक के किसी नट विशेष भरत की उक्ति होने के कारण ही इसे भरतवाक्य कहते हैं। इस तरह इस इकाई में आपने प्रवेशक, विष्कम्भक, भरतवाक्य, जनान्तिक, आकाशभाषित तथा अपवारित के बारे में अध्ययन किया।

6.4 शब्दावली

परावृत्य	–	परिवर्तित होकर, घूमकर
अङ्गवलनेन	–	अङ्ग को घूमाकर
अपवार्यत	–	हटाकर
अन्यान्	–	दूसरों को
अन्योन्य	–	एक-दूसरे को
परकीयः	–	दूसरे का
श्रुत्वा	–	सुनकर
निदर्शकः	–	निदर्शन कराने वाला
सङ्कीर्ण	–	मिश्रित, मिला हुआ
संप्रयोजितः	–	प्रयोग किया जाने वाला
नाट्यन्ते	–	नाटक के अंत में

6.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1) साहित्यदर्पण – डॉ. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, दशम संस्करण, 1997।

2) अभिज्ञानशाकुन्तलम् – डॉ. श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण, 2000।

3) नाट्यशास्त्रसमुल्लास – केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, गरली, कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश, 2002।

4) साहित्यदर्पण – लक्ष्मी टीका युक्त, आचार्य कृसामोहन शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, सम्वत्–2041

5) नाट्यशास्त्र – भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 1983

6.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न

1) (i) जनान्तिक में (ii) आकाशभाषित (iii) दो (iv) दो अंकों के मध्य में (v) भरतवाक्य।

2) आचार्य विश्वनाथ के अनुसार अपवारित का लक्षण इस प्रकार है – रहस्यं तु यदन्यस्य परावृत्य प्रकाशते, तद्भवेदपवारितम्।

3) विष्कम्भक के दो प्रकार हैं – शुद्ध विष्कम्भक, संकीर्ण विष्कम्भक।

4) प्रवेशक की भाषा प्राकृत होती है।

अभ्यास प्रश्न

इन प्रश्नों के उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।